शिव-शक्ति

जगन्नाथ पाठक

श्री. खण्डेलवाल प्रेस को.

सस्नेह.

१५-१-१९७०

शिव-शक्ति

लेखक
जगन्नाथ पाठक

प्रकाशक

श्री मोहनलाल पाठक

के ६/८, लाला संड की गली

वाराणसी–१

प्रथम संस्करण

मकर संक्रान्ति २०२७

१४ जनवरी १९७०

मूल्य–श्रद्धा

प्राप्ति स्थान

इलेक्ट्रिकल इक्विपमेन्ट इण्डस्ट्रीज

के. ४/७४ गायघाट, वाराणसी–१

मुद्रक :—विश्वनाथ भार्गव

मनोहर प्रेस,

जतनवर, वाराणसी

समर्पण

अपने उन स्वर्गीय पितृ एवं गुरुजनों को बारम्बार प्रणाम
करता हूँ, जिनके आशीर्वाद से ही यह कल्पना कर
सका, अतः उन्हीं के चरणों में अपनी यह
तुच्छ रचना सादर समर्पित

पूज्य पितामह—पं० दुर्गाशंकर पाठक

पूज्य पिता—पं० बालकृष्ण पाठक

विद्या-गुरु—गोस्वामी श्री दामोदर लाल शास्त्री
आचार्य श्री सभापति जी उपाध्याय

अध्यात्म-गुरु—श्री देवनायकाचार्य जी

दो शब्द

शिव-शक्ति नामक पुस्तक आपके समक्ष प्रस्तुत है। इसमें मेरी अमूर्त्त कल्पना को मूर्त्तरूप दिया गया है। मेरी कल्पना को साज-सँवार कर पुस्तक का रूप देने में जिन सहयोगियों ने सक्रिय या निष्क्रिय सहयोग दिया है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना मात्र औपचारिकता होगी। विशेषत: श्री वैजनाथ वर्मा, तूलिका के मर्मज्ञ का मैं हृदय से आभार मानता हूँ। उन्हींके प्रयास का यह परिणाम है कि पुस्तक मनोहर आकर्षण लेकर आपके समक्ष प्रस्तुत हुई है। विद्वद्वरेण्य श्री द्विजदेव उपाध्याय आचार्य, एम० ए० मेरे स्नेह के पात्र हैं, धन्यवाद उन्हें स्वीकार न होगा। मेरी पाण्डुलिपि को गढ़कर पुस्तक का रूप उन्होंने ही दिया है। उनके श्रम की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता।

इस पुस्तक को पाठक रुचि से पढ़ेंगे, ऐसी आशा है। पुस्तक में वर्णित कथा-उपकथा हृदय में शिव एवं शक्ति के प्रति पुञ्जीभूत श्रद्धा का व्यक्त रूप है। यह पुस्तक जगन्माता एवं जगत्पिताके चरणों में फँसे जन को शान्ति एवं सुख प्रदान करे, जगन्माता एवं जगत्पिता 'शिव-शक्ति' से यही विनीत प्रार्थना है।

श्रद्धा-भक्ति से पठन-पाठन ही लेखक की सफलता है।

विनीत—

जगन्नाथ पाठक

शिवशक्ति
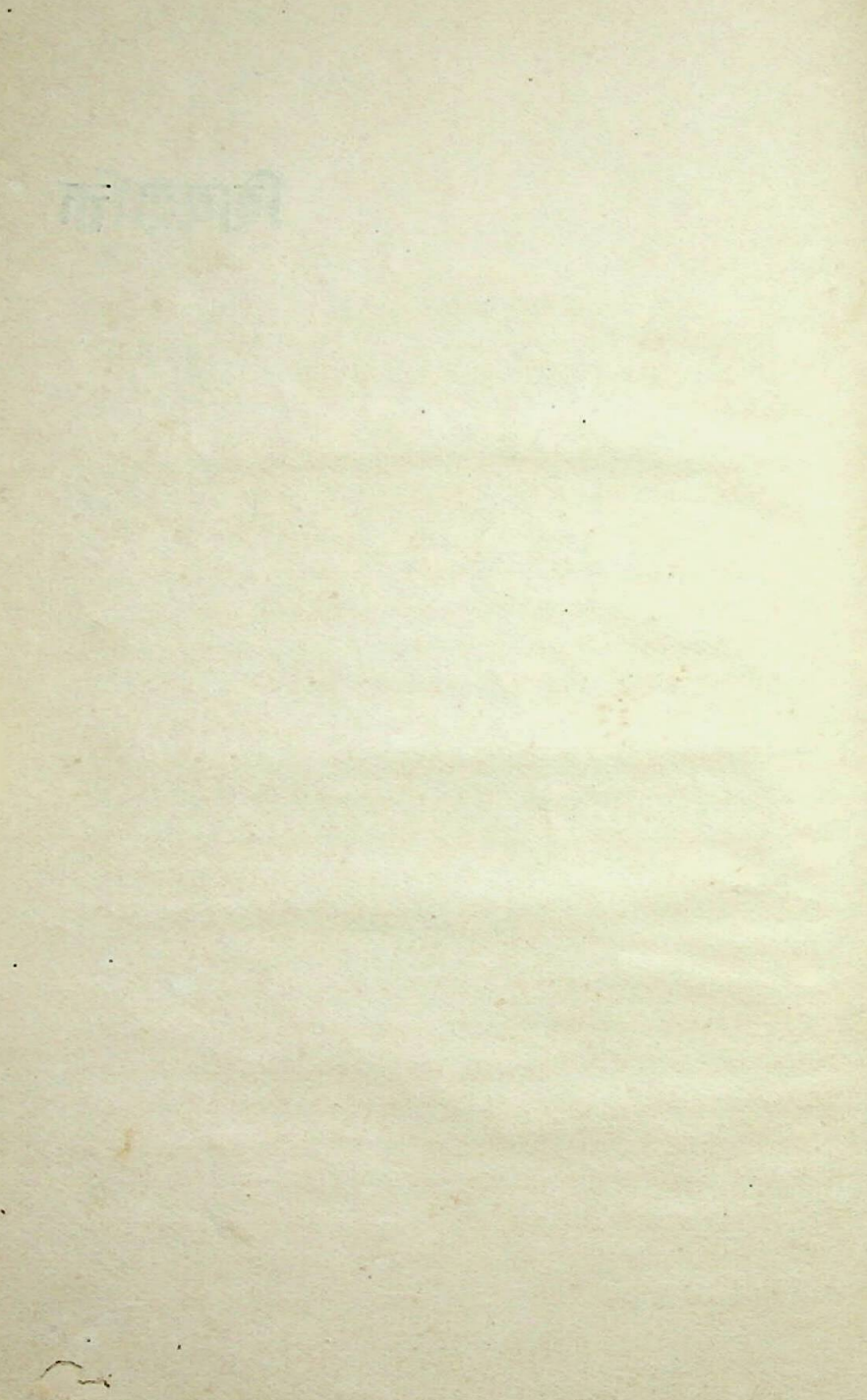
आत्म-निवेदन

कभी सोचा भी न था कि अपनी साधारणतम बुद्धि द्वारा जीवन में कुछ लिख पाऊँगा। कारण, लेखक के लिए अनेक गुणरूप अलंकारों की आवश्यकता होती है और मुझमें उनमें से एक भी नहीं। फिर भी, ईश्वर की लीला बड़ी ही अकल्पित हुआ करती है। उसी आदि-शक्ति ने मुझसे यह काम करवाकर "मूक होई वाचाल" को मूर्तरूप में खड़ा कर दिया।

यह भी संभव है कि कदाचित् पूर्वजन्म का कुछ संस्कार रहा हो। यों, बचपन केवल खाने और खेलने में ही बीता। मात्र १५ वर्ष की आयु में कुछ शुभचिन्तकों एवं भक्तों का पार्थिव-पूजन देख मन उस ओर आकृष्ट होने लगा था। उनका पार्थिव-पूजन देखते चित्त कुछ विलक्षण समाधान पाने लगता। कुछ दिनों तक लगातार इस पुण्यकृत्य को देख स्वयं में भी उसी प्रकार पूजा करने की इच्छा उत्कट हो उठी।

मेरे पितामह काशी के माने हुए विद्वानों में से थे। उनकी कृपा से इस उपासना का समग्र शास्त्रीय-विधान मिल सकता था। लेकिन उनसे पूछने का साहस न होता था। कारण, मैं उनकी इच्छा पूर्ण नहीं कर पा रहा था। वे घर की संस्कृत विद्या में मुझे पारंगत करना चाहते थे, जबकि मैं उसके लिए सर्वथा असमर्थ रहा। वे इतने दृढ़ निश्चयी थे कि ११ पुत्रों के अल्पायु होकर काल-कवलित होने के बावजूद १२वें पुत्र के आत्मज मुझसे अपनी चाह बदलना गँवारा नहीं कर सकते थे। पूर्व संस्कार के अनुसार मेरा सुझाव अंग्रेजी पढ़कर इंजीनियर बनने की ओर था, जब कि वे अपने अनेक सहपाठी काशी के तत्कालीन मूर्धन्य विद्वान्—आचार्य सर्वश्री नित्यानन्दजी पर्वतीय, गोस्वामी दामोदरलालजी, गोपाल शास्त्री नेने, मदनमोहन शास्त्री जी जैसे महानुभावों के पास संस्कृत पढ़ने के लिए भेजते। लेकिन वहाँ मेरा ध्यान लघुसिद्धान्त कौमुदी आदि की तरफ नहीं झुका। यदि थोड़ी-बहुत रुचि हुई तो कथा-कहानियों के रूप में रघुवंश, मेघदूत, हितो-पदेश आदि एवं नीति-काव्य ग्रंथों पर ही। उनमें भी संस्कृत श्लोक या गद्य रटने में कोई रस न आता, बल्कि उनका भावार्थ जानने तक ही उत्सुकता रहती।

उपर्युक्त भारत-विभूतियों को पाकर मैं उनके सामने पुस्तक लेकर बैठता अवश्य, पर मुझसे केवल उनका दर्शन और थोड़ी-सी सेवा ही प्रामाणिकता से होती रही। अध्ययन में वह प्रामाणिकता नहीं रही। पढ़ते समय भी पुस्तक

में छिपाकर मशीनों के नक्शे और मनचाहे चित्र बनाता रहा। जब गुरुजन यह देख लेते, तो डाँटते। आखिर उन्होंने पू० दादाजी को पत्र लिखा कि पाठकजी, आपका पौत्र एक अक्षर नहीं पढ़ता। वह तो न मालूम मशीनों के कैसे-कैसे नक्शे बनाया करता है। अच्छा हो, आप संस्कृत छुड़ाकर इसे इंजीनियरिंग की ही शिक्षा दें। पू० दादाजी फिर भी अपने निश्चय से टस से मस न हुए। समझा-बुझाकर, ताड़ना देकर जब वे थक गये, तो मुझसे संभाषण करना छोड़ दिया।

अब पाठक समझ गये होंगे कि पार्थिव-पूजन की ओर आकृष्ट होकर और उसका समग्र शास्त्रीय विधान पू० दादाजी से सुलभ हो सकते हुए भी मैं उनसे इसके बारे में कुछ पूछ न सका। यह भी स्पष्ट है कि इंजीनियर बनने की मेरी लगन पूरी होने में उनका कुछ भी बल न मिला। १५ सालकी उम्र से ही इस दिशा में अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ा। पार्थिव-पूजन में विशेष श्रद्धा जग जाने से पूज्य पिताजी के परममित्र पं० कल्याण जी से उसे प्राप्त करने की सोची। उन्हें मैं 'चाचाजी' कहा करता। चाचाजी ने मुझे पार्थिव का थोड़ा-बहुत विधान बताया और कहा कि 'संकोच न करो, पूज्य दादाजी से जाकर पुस्तक माँग लो और उसके अनुसार पूजन किया करो।' एक दिन पू० दादाजी के न रहने पर मैंने उनकी पुस्तकों में से पार्थिव-पूजन की पुस्तक खोज निकाली और उसी के आधार पर दूसरे दिन से पार्थिव-पूजन करने लगा। इसी पार्थिव-पूजन के माध्यम से मेरी अनेक इच्छाएँ पूर्ण हुई। औघड़दानी शंकर ने मेरी भक्ति मान ली और उन्हीं की कृपा से बगैर अंग्रेजी जाने या डिगरी पाये बगैर मैं इंजीनियर बन गया।

पू० दादाजी से प्राप्त पुस्तक में शंकर, पार्वती, स्कन्द, गणेश और पिनाकपाणि के पंचायतन पूजन का विधान मिला। उनके आवाहन से लेकर विसर्जन तक के सभी मन्त्र उसमें लिखे थे। तदनुसार मैं जलहरी-सहित लिंग बनाना, फिर छोटी-छोटी १० गोलियाँ बनाकर ४ के ऊपर १ रखकर माता पार्वती को रचता। इसी प्रकार स्कन्द को जलहरी की बाँयी और अवस्थित करता, १ गोली पार्थिव के पीछे यानी दक्षिण पिनाकपाणि तथा जलहरी के अग्रभाग पर १ छोटी-सी पेड़े के समान गणेश की आकृति बनाकर रख देता। इस प्रकार प्रतिदिन निर्माण, पूजन और विसर्जन का क्रम लगातार ६ वर्षों तक चलता रहा। पार्थिव के इस पूजन से अकल्पित रूप में मेरे मनोरथ पूर्ण हो चले।

मृत्युंजय-जप और पार्थिव-पूजन के फलस्वरूप ही अनेक विघ्नबाधाओं को पारकर मनोवांछित कन्या के साथ मेरा विवाह हो गया। विवाह के पूर्व मेरे

पूजन की सामग्री पू० माताजी तैयार कर देती थीं। अब वह भा० पत्नी ने उठा लिया। वह भी बड़ी निष्ठा से मेरे पूजन में सहयोग देने लगी। यह क्रम लगातार ३० वर्षों तक चला।

एक दिन पत्नी ने प्रश्न किया कि आप गणेश जी को पेड़े के समान बनाते हैं। क्यों नहीं, सर्वांगपूर्ण गणेश की प्रतिमा बनाते? कठिन होते हुए भी उसके आग्रह पर एतदर्थ यत्न किया। दूसरे दिन काम से छुट्टी थी तो उसी दिन से मैंने अंगुष्ठ-प्रमाण गणेश बनाने का उपक्रम किया। बार-बार वे टूट जाते। आखिर थोड़ी नयी रूई मिट्टी में मिलाकर प्रयत्न किया तो बड़े सुन्दर चतुर्भुज गणेश जी बन गये। फिर मैंने उन्हें दाँत, सूँढ़, अंकुश, पाश, पुस्तक, वरद हस्त आदि की योजना कर पूरी मूर्ति खड़ी कर दी। मूर्ति देखकर उसकी आँखों से श्रद्धा के आँसू छलक उठे।

पत्नी ने गणेश-निर्माण उसी समय सीख लिया। मैं भी यह भार उन्हीं पर सौंपना चाहता था। कारण मुझे रोज इतना समय मिलना संभव न था। ४–५ दिनों बाद हम लोग संयुक्त रूप में पार्थिव पंचायतन बनाने लग गये। इस तरह ४–५ वर्ष पूजन में व्यतीत हो गये।

एक दिन यह भावना जगी कि भगवान् का मस्तक सूना रह जाता है। इस पर फणा काढ़े सर्प हो तो बड़ा सुन्दर लगेगा। फिर क्या था, दोनों इसमें लग गये। तुरत खोज-खाजकर १० इंच लंबा और ८ इंच चौड़ा शीशा एक तसवीर से निकाला। रूई मिट्टी में मिलाकर बेलकर फणादार सर्प बनाया। भींगे अक्षत से उसकी आँखें बनायीं। मौसमी फूल की दो पत्तियाँ निकालकर उनकी लपलपाती जीभ बनायी। केसरिया चन्दन से फण पर चरण चिह्न अंकित किया। उसके पैर का काम देनेवाली तलपेट की बेड़ी धारियाँ अंकित की गयीं। पीठ पर भी उसी चन्दन की क्रमबद्ध बूँदें बनायी गयीं। इस तरह वासुकी सर्प तैयार होने पर उसे लिंग में डेढ़ फेरा लपेट गेंडुरी बाँधकर लिंग से ३ अंगुल ऊपर फण फैला अकड़कर खड़ा किया गया तो लिंग में अद्भुत सुन्दरता आ गयी। इस तरह सर्वांगपूर्ण पार्थिव पंचायतनका दर्शन कर हम सब आत्मविभोर हो गये।

पत्नी और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब इतने दिनों बाद, करीब ५० वर्ष की अवस्था में पूजन के आराध्यदेव का यह मौलिक सर्वांगपूर्ण रूप बना पाये तो स्पष्ट है कि बाह्य इंद्रियाँ शिथिल होने पर ही आन्तर इंद्रियाँ खुलती हैं। तभी अन्तर्दृष्टि मिलती है जिससे प्रभुका साक्षात्कार हो पाता है। अतएव, हम लोगों ने तय किया कि क्यों न आँखें बन्दकर मूर्ति-निर्माण की यह क्रिया की जाय ताकि कदाचित् आँखें चली जाने पर भी यह कला सधी रहे। भगवान्

का पूजनादि भी आँखें बन्द करके ही किया जाय। आँखें बन्द करके ही सप्तशती आदि स्तवनों के पाठ किये जायँ। इस तरह अपने आराध्य को प्रसन्न करने में अपेक्षाकृत एकाग्रता प्राप्त हो सके।

अव हम लोगों का यह अभ्यास शुरू हुआ। अभ्यास-बीच जब कभी कुछ असुविधा होती तो आँखें खोल अपना सन्देह निवारण कर लेते और पुनः आँखें वन्द कर काम चलता रहता। यह अभ्यास ६ मास तक चलता रहा। दूसरे श्रावण से पुनः हम लोगों ने आँखे खोलकर रचना प्रारम्भ कर दी। आँखें बन्दकर इष्ट देव के निर्माण एवं पूजन-भजन में जो विलक्षण एकाग्रता, तन्मयता, प्रभु के अधिकाधिक सान्निध्य का भास होता रहा, उसका शब्दों में वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी बीच भगवान् का जो अपूर्व 'अनुग्रह' कहा जाता है, हमें प्राप्त हुआ।

वहुतों की धारणा है कि अपनी साधना के ये चरण कभी प्रकट करने नहीं चाहिए। दैवी अनुग्रहों एवं पुण्यों की वाच्यता करने पर उनका पुण्य-प्रभाव समाप्त हो जाता है। फिर भी इस बारे में बहुत सोचने के बाद मैं यह जो धृष्टता कर रहा हूँ उसका एक मात्र कारण यह धारणा है कि वे सारी उपलब्धियाँ और ज्ञान व्यर्थ हैं जिनसे दूसरों को प्रकाश न पहुँचे। यदि अपनी अच्छी से अच्छी वस्तु को गुप्त रखा जाय तो वह स्वार्थ-साधना ही कही जायगी, जो कभी समर्थनीय या प्रशंसनीय नहीं। इसलिए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भले ही इसे प्रकट करने में मेरी सिद्धि नष्ट हो जाय, मुझे कुछ न प्राप्त हो, फिर भी यदि जन-साधारण को इससे कुछ प्राप्त हुआ, उनकी मेरे इष्ट प्रभु की ओर लगन लगी तो मैं सब कुछ पा लेने का सन्तोष करूँगा।

अन्त में औघड़दानी भोले बाबा शिव और उनकी आद्याशक्ति से यही प्रार्थना है, यही भिक्षा याचना है कि अपनी ऐसी ही कृपा सब प्राणियों पर बनाये रखें। प्रभु की आराधना में कभी बीच में ऐसा भी समय आता है कि सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाता है और दाने-दाने के लिए मुँहताज होना पड़ता है। पर यह साधक की परीक्षा का काल होता है। उसमें उसे बड़ी दृढ़ता से अपनी साधना अखण्ड बनाये रखनी पड़ती है तभी वह अभीष्ट प्रभु-कृपा का अधिकारी बनता है। इन पंक्तियों के लेखक को भी इन टेढ़े-मेढ़े रास्तों से गुजरना पड़ा था, पर अन्त में आज उसी परम दैवत शिव-शक्ति के असीम अनुग्रह से उसे सब-कुछ सुलभ होकर परम समाधान है।

इस प्रसंग में हम यह पुनः स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि यह सब आत्म-चरित्र लिखने का हमारा यह कथमपि अभिप्राय नहीं कि मैं कोई विशिष्ट साधक

या प्रभु-अनुगृहीत हूँ। आप जैसा ही और आप सबके बीच ही व्यवहार करने वाला मनुष्य मात्र हूँ। मात्र प्रभु की साधना का एकप्रकार मिलने पर, उसके सहारे उन्हें मनाने पर जो लौकिक लाभ होता है, उसका निर्देश मात्र मार्ग-दर्शनार्थ किया गया है। आध्यात्मिक लाभ की तो शब्दों में चर्चा ही क्या की जाय ?

इसलिये विश्वास के साथ कहने में प्रसन्नता होती है कि लेखक को अपनी दुरवस्था सुधारने की उसकी इस कल्पना ने ही मूर्त रूप में सत्य होकर शिवशक्ति के आशीर्वादस्वरूप बल प्रदान किया और उसी जननी के आशिर्वाद से यह कल्पना स्वयमेव सिद्ध हुई, ऐसा लेखक का एक पूर्ण और दृढ विश्वास है।

यह तो उन्हीं भगवान् शिव और उनसे अभिन्ना शक्ति की कृपा का प्रताप है कि उनके गौरव-गानार्थ ये सुकोमल भाव-सुमन प्रस्तुत करने जा रहा हूँ। वास्तव में ये भाव भी मेरे अपने नहीं, महात्माओं के अनुग्रह से ही समय-समय पर हृदयाकाश में स्फुरित हुए। उन्हीं की कृपा से मैं तो केवल उन्हें शब्दों का जामा पहनाकर कृपालु पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहां हूँ। हृदय के भाव होने के कारण ही इसमें हुई अपनी स्वभावज भूलों के अपराध से बचने का पासपोर्ट मुझे हासिल हो जाता है। हाँ, तो इस प्रकरण में मैं पाठकों को प्रस्तुत पुस्तक की आत्मकथा सुनाने जा रहा हूँ।

पिछले प्रकरण से यह तो स्पष्ट ही है कि लेखक को एकमात्र भगवान् का अनुग्रह ले अपने पैरों पर ही जीवनयापन करना पड़ा। ऐसी स्थिति में अनेक उतार-चढ़ावों का आना स्वाभाविक है। तदनुसार इसे भी आरम्भ में घोर आर्थिक विषमता से गुजरना पड़ा। उस समय मन की स्थिति अत्यन्त अनमनो-सी हो उठती थी। वैसी स्थिति में मन के समाधान का एक उपाय यह ढूँढ़ निकाला गया कि एक कापी बनाकर मन में जैसे भी भाव उठे, लिख लिया जाय। वास्तव में इस उपाय से समाधान भी प्राप्त होता रहा। समय में स्वयं स्फूर्त उन विचारों के संकलन की अच्छी खासी फाइल बन गयी।

एक दिन की बात है। महालक्ष्मी की अष्टमी की पूजा का अवसर था। रात्रि में पूजन के समय जब मैंने अपने छोटे पुत्र चि० चन्द्रशेखर से पूछा कि लक्ष्मी-कथा-पूजा की पुस्तक बाबा के पास से ले आये ? तो उसने कहा : खोजने पर भी पुस्तक नहीं मिलो। सालभर में एक आध बार आवश्यकता पड़ने से वह कहीं रख दी गयी। तब समय पर कैसे मिल पाये ?

इस पर मैंने कहा : 'कोई बात नहीं। इस समय सभी पारिवारिक जन शक्ति चाहते हैं और मैंने भी मनःशान्ति के लिए कुछ लिख रखा है। ऊपर जाकर

मेरी वह फाइल ही उठा ले आओ। आज उसे ही पढ़कर कथा की पुस्तक की पूर्ति कर ली जाय। वह भी भगवान की आराधना ही होगी।'

चि० शेखर पुस्तक (फाइल) ले आया और कथा के स्थान पर वही पूरे परिवार को पढ़ सुनायी गयी। आश्चर्य की बात यह कि आज की पूजा और कथाश्रवण में परिवार के नन्हें बच्चे से लेकर ८० वर्ष के बूढ़े तक श्रोताओं के रूप में उपस्थित थे। चि० शेखर द्वारा पढ़ी जा रही इस कथा को सुनकर आबाल-वृद्ध-नर नारी सभी एकदम तन्मय और एकाग्र हो गये। सभी के देहों पर सात्विक भाव, रोमांच हो गये और आँखों से प्रेमाश्रु की धाराएँ बहने लगीं।

हमें तो ऐसा लगा कि कथा के प्रसंग के साथ-साथ देह भी अनन्त आकाश में विचरण कर रहा है। वहाँ के दृश्यों को कल्पना की आँखों से देखते आनन्द का सागर ऊफान कर रहा था और हृदय में समा न पाने से आँखों की प्रणालिकाओं से बाहर बहा जा रहा था।

तभी मेरे मन में यह भाव उठा कि यह कथा गुरुचरणों के समक्ष जाकर दिखायी जाय और उनसे इसे जँचवा लिया जाय कि इसमें कोई बात वेद-शास्त्र, समाज या शिष्टाचार के विरुद्ध तो नहीं है।

फिर क्या था ? दूसरे ही दिन मैं गुरुदेव पूज्यपाद जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य श्री देवनायकाचार्यजी महाराज की सेवा में पहुँचा और पहले दिन की घटी सारी घटना सुनाकर पूरी पाण्डुलिपि (फाइल) उनके चरणों में संशोधनार्थ समर्पित कर दी। उसी समय ५-१० पृष्ठ उलटकर सरसरी तौर पर दृष्टि डाल उन्होंने इसे समग्ररूप में रोज एक घण्टा पढ़ सुनाने का आदेश दिया और कहा कि सुनते समय कोई ऐसी शास्त्रादि-विरुद्ध बात आयी तो उसी समय सुधरवा दूँगा। तुमने श्रद्धा-भक्ति से लिखा है तो मुझे भी उसे एक-एक अक्षर पहले सुन लेना चाहिए।'

दूसरे दिन नियत समय पर गुरुदेव के पास पहुँचा और उनकी आज्ञा पाकर उक्त कथा सुनाने लगा। गुरुदेव तकिये के सहारे प्रसन्न मुद्रा में एकाग्रचित्त हो उसे सुनते रहे। बीच-बीच में मन्द-मधुर हास्य कर कथा में और भी मिठास घोलते रहे। कई बार किन्हीं विशेष विषयों को दो-तीन बार पढ़वाकर ध्यान देकर सुनते-जाँचते। बीच-बीच में झटके से उठकर पूछ बैठते कि 'क्या पहले भी कभी इस प्रकार कुछ लिखा है ?'' विनय से, लज्जित हो मैं उत्तर देता कि कभी नहीं। गुरुदेव, आप जानते ही हैं कि मैं तो थोड़ी-बहुत विद्युत् और मशीनरीसंबंधी जानकारी रखता हूँ। शास्त्र और साहित्य का तो ककहरा भी नहीं जानता। यह सारा तो हृदय में उसी शिवशक्ति की कृपा से जो स्फूर्ति होती

है, उसे अपनी ही भाषा में लिपिवद्ध करने का अनजान में यत्न किया है। गुरुदेव वार-वार कहते : 'तव तो निश्चय ही तुमपर उस आद्या शिवशक्ति की असीम कृपा हो गयी है, जो शास्त्रों के कई गूढ़ रहस्यों को तुम इसमें केवल अन्तःस्फूर्ति के सहारे संकलित कर पाये हो। तुमने विषम परिस्थिति में मनः-समाधान का यह मार्मिक उपाय खोज निकाला और इससे तुम्हें समाधान मिलने के साथ ही जन-साधारण के लिए भी एक वहुत महत्व की उपलब्धि तुम्हारे हाथों वन पड़ी है।

एक सप्ताह के वाद कथा का पढ़ सुनाना पूर्ण हो गया। गुरुदेव अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि श्रद्धालुओं का इस कथा से वहुत लाभ होगा। इसमें भक्ति का स्रोत जगह-जगह फूट पड़ा है। सारा का सारा दिव्य दृश्य आँखों के सामने खड़ा हो जाता है। इसे जल्द से जल्द छपवाकर भावुकों के लिए सुलभ कर दो।

किन्तु दुर्भाग्य की वात कि गुरुदेव इस घटना के दो-तीन महीने वाद अक-स्मात् वैकुण्ठवासी हो गये। उनकी वह प्रसन्न वरदमुद्रा सदैव आँखों के सामने नाचती है। दुर्भाग्य है कि इस कारण इस पुस्तक के लिए उनके श्रीहस्त से लिखा आमुख (भूमिका) मैं प्राप्त न कर सका। पुस्तक मुझे लौटाते हुए उन्होंने सुत-निर्विशेष स्नेह से कहा था : 'छपने पर इसके अनुरूप इसकी भूमिका मैं स्वयं लिख दूँगा।' यही है प्रस्तुत कथा की, ग्रंथ की रामकहानी।

विनीत

जगन्नाथ पाठक
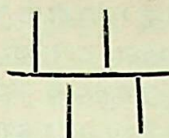
शिव और शक्ति

शिव और शक्ति इन्हीं दो तत्वों पर यह सारी सृष्टि संचालित होती है। इन्हीं दो अनादि शक्तियों द्वारा जगत् की उत्पत्ति, स्थिति या पालन और अन्त में विघटन (संहार) होता रहता है, यही हमारे धर्मग्रंथों का सुनिश्चित मत है। संचालनकर्ता शिव की इच्छाशक्ति ही उनकी शक्ति है, जिसकी कोई तुलना ही नहीं। मानव के श्वास-प्रश्वास की तरह वह शक्ति शक्तिमान् शिव से सर्वथा अभिन्न है। आश्चर्य यह कि इतनी महान् होते हुए भी यह अघटित-घटना पटीयसी शक्ति सर्वदा अदृश्य ही रहा करती है। फिर भी ज्ञानी जनों ने अपने-अपने ज्ञान और विवेक के बल पर जगद्व्यापक अनेक विभिन्न शक्तियों के रूपों में उसकी कल्पनाएं कर रखी हैं।

वास्तव में, इस शक्ति का चमत्कार जड़, चेतन सभी में अनेक प्रकारों में पूर्णतः परिलक्षित होता रहता है। इसे देखना चाहें तो विश्व के कण-कण में देख सकते हैं; किन्तु इसके लिए जिज्ञासु की वृत्ति चाहिए। वर्तमान युग में विज्ञान आपके सम्मुख क्रमशः उस शक्ति को प्रत्यक्ष करता जा रहा है। उसी की विशाल एवं तलस्पर्शी दृष्टि से क्या आप अणु-परमाणु सरीखी अद्भुत उपयोगी शक्ति नहीं प्राप्त कर सके? यह वैज्ञानिकों की तपश्चर्या का ही फल है कि आप उसका उचित समन्वय और गठन करके अपनी आवश्यकता के अनुसार उसे हित या अहित में विनियुक्त कर सकते हैं। फिर भी यह दावा कभी नहीं कर सकते कि इन अणु-परमाणुओं में शक्तिदाता स्वयं आप हैं।

सारांश यह कि इस प्रकार सृष्टि के सारे पदार्थ और प्राणिमात्र जड़-चेतन सभी में उसी सर्जक शक्ति के चमत्कार विद्यमान हैं, जिन्हें जीवनपर्यन्त गिनाया नहीं जा सकता। दो-चार उदाहरण आपके सामने हैं।

कोयले को पका-पकाकर अतिउष्ण ताप मे पृथ्वी के गर्भ में अमूल्य रत्नों, हीरों का और अनेक महत्त्वशाली स्वर्ण, रजत, पारद आदि धातुओं का निर्माण हमारे सामने है। जरा सोचें कि प्रकृति के गर्भ में कितनी महान् सक्रिय और स्वयंचालित प्रयोगशाला होगी। वहाँ के वरिष्ठ अधिकारी कौन होंगे, फोरमैन कैसे होंगे? कितने कारीगर होंगे, उन्हें ट्रेनिंग कहाँ से मिलती होगी, उन्हें मासिक वेतन आदि कहाँ से प्राप्त होता होगा? जहाँ केवल उर्वरक खाद तैयार करने

के लिए हमें और आपको बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ खोलनी पड़ती हैं। कितनी ही नगण्य वस्तुओं को पैदा करने के लिए कितने बड़े-बड़े साधन इकट्ठा करने पड़ते हैं। वहीं ये दुर्लभ, बहुमूल्य वस्तुएँ केवल आदिशक्ति के इच्छामात्र से स्वयमेव उत्पन्न होती रहती हैं। कौन ऐसा प्राणी होगा, जो उसके इन महान् उपकारों को भूले ?

फलों के बीच एक अनार को ही लें और उसकी निर्माणकला का सूक्ष्मता से अवलोकन करें कि कितनी सुन्दरता से उसमें अनेक शरबती दाने पंक्ति-बद्ध सजाये गये हैं। उन्हें व्यवस्थित रखने के लिए एक पतली-सी झिल्ली (सेप्रेटर) दूसरे दानों के दबाव से संरक्षण देती है। अनेक आपदाओं से सुरक्षित रखने के लिए उसे एक मजबूत खोल से सुरक्षित किया गया है ! इस फल की अलौकिक निर्माण-कला देख निर्माता के कौशल पर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है ! ऐसे असंख्य पदार्थ इस विश्व में भरे पड़े हैं जो अदृश्य-अलौकिक शक्ति की बेजोड़ करामातें हैं !

यही आदिशक्ति एक ओर अमृतसदृश अनेक वनस्पतियाँ पैदा करती है, वहीं दूसरी ओर हलाहल से भरे भयंकर महाकाल साँपों को भी जन्म देती है, जिनकी विषैली हवा के एक झोंके से हाथी-सा विशाल प्राणी भी मोम-सा गल कर नष्ट हो जाता है। सचमुच यह कैसा सुन्दर संतुलन प्रकृति-शक्ति ने स्थापित कर दिया है, जो देखते ही बनता है। विचित्र है उस प्राकृतिक शक्ति की अपूर्व लीला ! कुछ भी अनुमान, अन्दाज लगाया नहीं जा सकता कि कितनी बड़ी होगी उसकी विज्ञानशाला, कितने असंख्य होंगे उसके उपकरण और कितनी विराट् एवं अदम्य होगी उसकी शक्ति !

ममतामयी माता बालक को नौ मास तक अपने गर्भ में धारण कर जन्म देती और स्तन-पान तथा विविध सेवाओं द्वारा उसका पालन-पोषण कर उसे आत्म-निर्भर बनाकर ही दम लेती है। यही कारण है कि भारतीय धर्मशास्त्रों ने माता का स्थान सर्वोपरि माना और कहा है कि प्राणी संसार के सभी ऋणों से किसी न किसी तरह उऋण हो सकता है, पर माता के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता। फिर भी जरा सोचें कि उस ममतामयी माता के स्तनों में जो बालक के लिए अमृतोपम दुग्ध उत्पन्न करने की क्षमता रखती है और मानव के लिए जीवन-पर्यन्त अनेकानेक जीवनीय वस्तुएँ उपलब्ध कराती है, माता की उस परम माता को भूलकर हमारा कल्याण कैसे हो सकता है ?

ध्यान दें कि संसार की इतनी बड़ी विशाल विज्ञानशाला और निर्माणशाला का संचालक कितना महान् होगा ! फिर वह प्रयोगात्मक क्रिया के लिए कभी

उस प्रयोगशाला में उपस्थित भी नहीं होता। उसके संकेतमात्र पर, कल्पना या इच्छामात्र से सारी सृष्टि का सुन्दर संचालन होता रहता है। ऐसा परम उपकारी पालनहार कौन हो सकता है ? अपने-अपने धर्म परम्परा या मान्यता के अनुसार आप उसका कुछ भी नाम रख लें, उस असीम शक्तिको अबतक प्राचीन से प्राचीनतम वाङ्मय वेद, उपनिषद्, पुराण, इतिहास भी किसी नामविशेष की सीमा में न बाँध सके तो आज कौन बाँध सकता है ?

जरा सोचें, ये चन्द्र, सूर्य, मंगल आदि ग्रह हमारे सामने हैं। हमारी आँखें उन्हें देखती हैं। फिर भी उनकी दूरी को ठीक-ठीक पहचानने में हमें कितने कठिन श्रम से गुजरना पड़ता है। वैज्ञानिकों को इसके लिए कितना महत् अध्ययन करना पड़ा और पड़ रहा है। इस तरह अगम्य, अतिशय दूरवर्ती इन ग्रहों को इतने-इतने करोड़ों मील दूरवर्ती सिद्ध करने में भले ही आज के वैज्ञानिक सफल हुए हों, फिर भी इस विश्व ब्रह्माण्ड के प्रांगण में ये चन्द्र आदि ग्रह राई के दाने के बराबर अस्तित्व रखते हैं।

इस सारे विवेचन से स्पष्ट है कि इन सभी परम आश्चर्यजनक विश्व-ब्रह्माण्ड के समस्त पदार्थों को यथाकाल, यथास्थान अपना-अपना कार्य करने का निर्देश देनेवाली एक ही शक्ति है, जो परम मंगलमयी और कल्याणमयी है। इसीलिए हम उसे 'शिव-शक्ति' नाम देते हैं। वह व्यवहार में मानव और उसके श्वासों की तरह पृथक् दीखने पर भी अन्ततः उसीका एक अभिन्न अंश है। उसी एक तत्त्व की वह प्राणशक्ति है। इस शक्ति-तत्त्व के इतने स्वरूप और इतने नाम हैं कि गिनाये नहीं जा सकते। उसे शिवा, भवानी, रुद्राणी, शर्वाणी, सर्वमंगला, अपर्णा, पार्वती, दुर्गा, मृडानी, चंडिका, अम्बिका आदि नामों से कहा गया है। यदि उस जगद्व्यापिनी आदिशक्ति की महत्ता का किंचित् आभास प्राप्त करना चाहें तो श्रद्धा-भक्ति के साथ दुर्गा-सप्तशती के कतिपय महत्त्वपूर्ण श्लोकों का मनन करें। वैसे इस अमर ग्रन्थ का एक-एक श्लोक मन्त्र है, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, कल्पवृक्ष-सदृश है। प्रस्तुत ग्रन्थ में उसी दिव्य दैवी-माहात्म्य के कतिपय दिव्य श्लोकों का मनन करते हुए भगवती शिव-शक्ति का गौरव-गान किया जा रहा है। मार्कण्डेय मुनि का, जो महाकाल से भी लड़े और जल-प्रलय के समय समुद्र में तैरते रहे, पार्थिव-शरीर आज लुप्त हो गया हो, पर उनकी अमरवाणी दुर्गा-सप्तशती का एक-एक श्लोक इस जगती पर जबतक विद्यमान रहेगा, उनकी अमर कीर्ति-काया बनी रहेगी।

सभी महान् लोगों ने जागतिक आतंक के समय सर्वविध विपत्तियों से त्राण पाने तथा लोक-कल्याण के लिए समय-समय पर इसी भगवती शिव-शक्ति की

अर्चना और आराधना की एवं सभी प्रकार के अभीष्ट प्राप्त किये हैं। अनादि-सिद्ध परम्परा से वेदशास्त्र-विश्वासी सभी आस्तिक जन आजतक उपासना द्वारा उसी आद्या-शक्ति का सहारा प्राप्त कर जीवनको लाभान्वित करते आ रहे हैं और भविष्य में भी करेंगे। फिर भी यह कहना पड़ता है कि जनता को इस प्रकार सन्मार्ग में लगाकर सफल मनोरथ वनाने के लिए नेता की आवश्यकता पड़ती है। राष्ट्रनायक को जनता के हित की ओर सतर्कता से ध्यान देकर स्वयं भगवच्छारणा-गति के इस पथ पर अग्रसर होना चाहिए, तभी सारी प्रजा अनायास परम्परागत श्रद्धा-विश्वास से प्रेरित हो उस मार्ग पर चल कर अनायास अपना अभीष्ट साध सकती है, जिससे समग्र राष्ट्र में सुख शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सकता है। महर्षि मार्कण्डेय आदि महानेता, महापुरुष इसी तरह के राष्ट्रनायक के रूप में हो गये हैं। अवश्य ही इस देश में राजा का भी इस दिशा में वहुत बड़ा योगदान रहा है, फिर भी समाज का अन्तिम नेतृत्व ऋषि-महर्षियों के ही अधीन माना गया है।

यहाँ पहले से ही अनेक धर्म, पन्थ फलते-फूलते रहे हैं और प्रत्येक धर्मा-वलम्बी को परम स्वतन्त्रता के साथ स्वधर्म-पालन का पूर्ण अवसर मिलता आ रहा है। कोई वलात् किसी पर परधर्म लाद नहीं सकता और न वह न्यायसंगत ही माना जाता है। फिर भी राजा जैसे राष्ट्र-संचालन के समय अनेक तत्त्वों का समन्वय कर एक व्यवस्था स्थापित करता है, सब धर्मों की भी राष्ट्र-संचालन के सन्दर्भ में, यही स्थिति होती है।

भारत के ऋषि-मुनियों की तरह ही भारत राष्ट्र के शासक भी संकट के समय सारी प्रजा को एकसूत्र में आवद्ध कर, अहं त्याग उनके साथ आद्याशक्ति की शरण जाया करते और उस जगज्जननी से समस्त प्रजा की सुख-समृद्धि की याचना करते। इतिहास के पृष्ठों में इसके अनेक उदाहरण पाये जा सकते हैं।

उन दिनों हमारा राष्ट्रनायक जनता का सच्चा सांस्कृतिक प्रतिनिधि हुआ करता था। वह हँसता तो जनता हँसती, वह रोता तो जनता भी रोती। राष्ट्रनायक जो आदेश देता, जनता उसीका सचाई के साथ अक्षर-अक्षर पालन करती। तभी राष्ट्र दृढ़तम एकसूत्र में आवद्ध होकर परम शक्त, सम्पन्न रहता। इस प्रकार राष्ट्ररक्षा के सन्दर्भ में अनेकधर्म-समन्वयी, विभिन्न धर्मावलंबियों की एक सीरीज कनेक्शनरूपी हाई वोल्टेज होता। उसकी अपरिमित विद्युत्-शक्ति प्राप्तकर आपका वह ट्रान्समीटर सक्रिय हो उठता, जिसके द्वारा अपनी आवश्यक शक्ति-की याचना सहज ही आदिशक्ति तक पहुँच पाती। यदि कभी असफलता मिलती तो उसके कारण शास्त्रों के वचनों का अप्रामाण्य नहीं, बल्कि वह हमारे ही

संयोजन की कमी मानी जाती। आवश्यकता है कि जनतारूप ट्रान्समीटर का सीरीज कनेक्शन कर एक राष्ट्रीयधर्म में सबको आबद्ध किया जाय। तभी हम उस शिवशक्ति से अपार शक्ति प्राप्त कर सकेंगे। उसने हमें आश्वासन दिया है कि आपत्ति में स्मरण करोगे तो मैं तत्काल तुम्हारी आपदाएँ दूर कर दूँगी।

तयाऽस्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात् परमापदः॥

एक ही बार नहीं, वह आद्याशक्ति माता कहती है कि इस प्रकार जब-जब दानवों द्वारा आप लोगों पर आपदाएँ ढायी जायँगी, प्रत्येक बार अवतार लेकर में आपके दुश्मनों का नाश कर दूँगी।

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदाऽवतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥

वैसे गीता में भी भगवान् ने 'यदा यदा हि धर्मस्य' से यही कहा है।

इन सबका सारांश यही निकलता है कि हम मानवों की सुख-समृद्धि और उद्धार के लिए शिवशक्ति सदैव प्रस्तुत है। हमें उपासना द्वारा उसे अनुकूल मात्र करना है। महर्षि मार्कण्डेय ने सप्तशती जैसी लोकोत्तर पुस्तक में यही बताकर 'गागर में सागर' भर दिया है। आगे के प्रकरणों में हम उसी की कुछ चर्चा कर उसी शिवशक्ति को जगाने का प्रयत्न करेंगे।

यह जो कल्पना इस पुस्तक में की जा रही है वह दुर्गा सप्तशती के अर्गला-स्तोत्र के केवल ४ श्लोकों पर आधारित है। वे अधोलिखित हैं।

(१) चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रे संस्तुते परमेश्वरि।
(२) कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके।
(३) हिमाचलसुतानाथ सँस्तुते परमेश्वरि।
(४) इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि॥

चतुर्भुजे चतुर्वक्त्र-संस्तुते परमेश्वरि

यों तो भगवती की अनेक विभूतियाँ है, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र द्वारा संस्तुता, पूजिता और आराधिता भगवती के रूपों का शब्द-चित्र भावों के रंगों से रंग कर प्रस्तुत किया जा रहा है। त्रिदेव और देवों के स्वामी इन्द्र द्वारा जिनकी स्तुति की जाय, उस भगवती शिवशक्ति की लोकोत्तर गौरवशालिता का पूछना ही क्या ? तो आइये, ब्रह्मदेव द्वारा भगवती का गौरव सुनिये।

एक समय भगवान् विष्णु क्षीर समुद्र में शेषशय्या पर निद्रा देवी की गोद में सो रहे थे। उनके कानों से जो थोड़ा मल वह निकला, उससे बड़े ही दुर्धर्ष मधु और कैटभ नामधारी दो दैत्य उत्पन्न हुए। उन्होंने विष्णु भगवान् को नाभि पर उगे कमल पर चार मुखवाले ब्रह्मा को बैठा देखा। उन्हें इच्छा हुई कि हम तो एक मुखधारी हैं। यह चार मुखधारी विशिष्ट व्यक्ति कौन आया है ? इसे खतम कर देना चाहिए। दोनों ब्रह्मा का वध करने को उद्यत हो गये। ब्रह्माजी घबड़ाए। उन्होंने विष्णु की तरफ देखा तो वे निद्रादेवी की गोद में निद्रित पड़े थे। अपने को असहाय देख ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से भगवती निद्रा देवी की ही प्रार्थना की कि आप तुरन्त भगवान् विष्णु की आँखों पर से हट जायँ और उनके मन में दोनों असुरों के वध की भावना उत्पन्न कर दें। उस समय ब्रह्माजी ने भगवती की जो सुन्दर प्रार्थना की, वह इस प्रकार है :—

विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभोः॥

ब्रह्मोवाच—

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता॥

अर्धमात्रा स्थिता नित्या याऽनुच्चार्या विशेषतः।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवी जननी परा॥

त्वयैतद् धार्यते विश्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतत् पाल्यते देवी त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने ।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये ।।

महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी ।।

प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी ।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा ।।

त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा ।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च ।।

खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा ।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डिपरिघायुधा ।।

सौम्या सौम्यतराऽशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरि ।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी ।।

यच्च किंञ्चित् क्वचिद् वस्तु सदसद्वाऽखिलात्मिके ।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे मया ।।

यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत् ।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः ।।

विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च ।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत् ।

सा त्वमित्थं प्रभावः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता ।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ ।।

प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु ।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ ।।

अर्थात् विश्व की अधीश्वरी, जगत् को धारण करनेवाली, संसारका पालन और संहार करनेवाली, तेजःस्वरूप भगवान् विष्णु की जो अनुपम शक्ति है, उन्हीं भगवती निद्रादेवी की पितामह ब्रह्मदेव स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी ने कहा : 'देवि ! तुम ही स्वाहा, स्वधा और वषट्कारस्वरूपा हो, जो यज्ञ के प्रमुखतत्त्व हैं। स्वर भी तुम्हारे स्वरूप हैं। तुम ही जीवनदायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणव में अकार, उकार, मकार—तीनों मात्राओं के रूप में तुम ही स्थित हो। उन तीन मात्राओं से अतिरिक्त विन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रारूप से

भी तुम ही स्थित हो, जिसका विशेषतः उच्चारण नहीं बन पाता। देवि, तुम ही सन्ध्या, सावित्री तथा परमजननी हो। इस विश्वब्रह्माण्ड को तुम ही धारण कर रही हो। तुमसे ही सारे जगत् की सृष्टि होती है, तुम ही इसका पालन करती हो तथा कल्प के अन्त में तुम ही सबको अपने में संहार करलेती हो।

'जगन्मयि देवि ! इस जगत् की उत्पत्ति के समय तुम सृष्टिरूप धारण करती हो, पालन-काल में स्थितिरूप तथा कल्पान्त के समय संहाररूप लेती हो। तुम ही महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति, महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो। तुम ही तीनों गुणों को उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम ही हो। तुम श्री, ईश्वरी, और बोधरूपा बुद्धि हो। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा तुम ही हो।

'मां ! तुम खड्गधारिणी, शूलधरा, घोररूपा, तथा गदा, चक्र, शंख, धनुष धारण करनेवाली हो। बाण, भुशुण्डि और परिघ ये भी तुम्हारे ही अस्त्र हैं। तुम सौम्य और सौम्यतर हो। इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुंदर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यन्त सुन्दर हो। पर और अपर, सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी भी तुम ही हो।

'हे सर्वस्वरूपे देवि ! कहीं भी सत् या असत् रूप में जो कुछ वस्तुएँ हैं, उन सबकी साररूपा शक्ति तुम ही हो। भला ऐसी अवस्था में तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है ? जो इस जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान् को भी जब तुमने निद्रा के अधीन कर रखा, तब तुम्हारी स्तुति करने की शक्ति किसमें हो सकती है ? भगवान् शंकर मुझे तथा महाविष्णु को भी तुमने शरीर धारण कराया है। ऐसी स्थिति में तुम्हारी स्तुति करने में कौन समर्थ हो सकता है ?

'देवि ! तुम तो अपने इन उदार प्रभावों से स्वयं ही प्रशंसित हो। ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इन्हें मोह में डालकर जगदीश्वर भगवान् विष्णु को शीघ्र जगाओ। साथ ही इनके अन्तःस्थल में इन दोनों महान् असुरों को मार डालने की बुद्धि उत्पन्न कर दो।'

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा।
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ ॥
नेत्रास्यनासिका - बाहु - हृदयेभ्यस्तथोरसः।
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः।
एकार्णवे हि शयनात्ततः स ददृशे च तौ ॥

मधुकैटभो दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ।
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं ब्रह्माणं जनितोद्यमौ ॥

समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः ।
पंचवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः ॥

तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ ।
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम् ॥

ऋषि कहते हैं : 'हे राजन् ! जब ब्रह्माजी ने इस प्रकार मधु और कैटभ नामक असुरों को मारने के उद्देश्य से भगवान् विष्णु को जगाने के निमित्त तमोगुण की अधिष्ठात्री देवी योगनिद्रा की स्तुति की, तब भगवान् के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षस्थल से निकलकर यह देवी अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी की दृष्टि के समक्ष खड़ी हो गयी ।

'योगनिद्रा से मुक्त होने पर जगत् के स्वामी भगवान् जनार्दन उस एकार्णव जल में शेषशय्या से जाग उठे । फिर उन्होंने दोनों असुरों को देखा । वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे और क्रोध से लाल आँखें किये ब्रह्माजी को निगल जाने का उद्योग कर रहे थे । तब भगवान् श्रीहरि ने उठकर उन दोनों असुरों के साथ पाँच हजार वर्षों तक केवल बाहुयुद्ध किया ।

दोनों अत्यधिक बल के कारण उन्मत्त हुए जा रहे थे । यह देख महामाया ने उन्हें मोह में डाल दिया । फलस्वरूप वे भगवान् विष्णु से कहने लगे : "विष्णो ! हम लोग तुम्हारी वीरता से परम सन्तुष्ट हैं । इसलिए तुम हमसे कोई वर माँग लो ।"

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्या उभावपि ।
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मया ॥

भगवान् ने कहा : "यदि तुम दोनों सचमुच मुझपर प्रसन्न हो तो यही वर माँगता हूँ कि तुम लोग मेरे हाथों मारे जावो । बस, इतना ही वर मैं चाहता हूँ । मुझे अन्य किसी वर की अपेक्षा नहीं ।"

'आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता'

इस प्रकार महामाया द्वारा वंचित उन असुरों ने जब सारे जगत् को जलाप्लावित देखा तो उन्होंने कमलनयन भगवान् विष्णु से कहा : "ठीक है, जहाँ पृथ्वी जल में डूबी न हो, उस सूखे स्थान में तुम हम दोनों को मार सकते हो ।"

तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता ।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः ॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम् ।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः श्रुणु वदामि ते ॥

ऋषि कहते हैं : 'असुरों की यह शर्त सुनकर भगवान् ने 'तथाऽस्तु' कहा और शंख-चक्र-गदा-धर उन प्रभु ने अपनी जाँघ पर उनके मस्तक रखकर चक्र से उनका वध कर दिया । इस प्रकार यह महामाया आदिशक्ति ब्रह्मदेव की स्तुति पर प्रकट हुई और मधु-कैटभ का वध कराकर उन्होंने जगत् को आश्वस्त कर दिया ।'

ध्यान देने की बात है कि उस समय के दैत्य भी इतने सत्यवादी और अपने वचन पर दृढ़ थे कि उसे सत्य करने में अपने प्राणों को भी कुछ नहीं गिनते थे । आज के युग में इतनी सत्यनिष्ठा और वचन पर दृढ़ता कहाँ दीख सकती है ?

यह भी विचारणीय है कि जिस समय ब्रह्मदेव ने उस महामाया आदिशक्ति की स्तुति की होगी और उनकी प्रार्थना पर वे साकार आविर्भूत हुई होंगी, वह दृश्य कितना अद्भुत रहा होगा ।

भूलना न होगा कि स्तुतिकर्ता कोई साधारण पुरुष नहीं, वेदपुरुष ब्रह्मदेव थे । संसार का साधारणतम वक्ता, जिसे प्रकृति ने कलापूर्ण वक्तृत्व-शक्ति दी हो, अपने रसभरे व्याख्यानों एवं वर्णनों से जगत् को मोहित कर लेता है । उसके व्याख्यान सुन लाख-लाख जनता मंत्र-मुग्ध हो उठती है । वहाँ ब्रह्मदेव की बात ही क्या ? उन्हें एक ही नहीं, चार-चार मुख हैं, उनके चार हाथ हैं । चार मुख और चार मस्तकों की सारी सेवा उनके एक हृदय को सुलभ है । उनके उस हृदय और जिह्वाग्रपर सप्त स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छनाओं से युक्त संगीत-देवता सरस्वती विराज रही है । सृष्टि के उत्पादन का बहुत बड़ा अधिकार उनके अधीन है । इस प्रकार सर्वविध लौकिक-अलौकिक शक्तियों से संपन्न भी पितामह बूढ़े ब्रह्मदेव मधु-कैटभ दैत्यों को स्वयं मारने में असमर्थ हो रहे हैं और आद्याशक्ति को यह काम करने के लिए मना रहे हैं—इसी से उस जगन्माता आद्या शिव-शक्ति की महत्ता स्पष्ट है । वह भी स्तुति से प्रसन्न होकर ऐसी चाभी घुमा देती है कि संसार के बेजोड़ ये दोनों असुर अपने वचन के पालनार्थ अपने हाथों अपना वध करवा लेते हैं और इस तरह अनायास जगत् में पुनः सुख-शान्ति का साम्राज्य छा जाता है । भगवती आद्या शिव-शक्ति की यही अलौकिक, अकल्पित सामर्थ्य है ।

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद् भक्त्या सदाम्बिके।

हे भगवती, कृष्ण ने भी कृष्णावतार में तेरी राधा के रूप में आराधना कर सारे व्रजमण्डल के कोने-कोने को सुख-समृद्धि से परिप्लावित कर सारे व्रजवासियों को सुखी एवं समृद्धिशाली वना दिया। तेरी कृपा से आज भी मथुरा व वृन्दावन साक्षी के प्रतीक हैं। श्रीकृष्ण शक्ति के अनन्य भक्त थे और इसीलिए कृष्णेन संस्तुते देवि 'शश्वद् भक्त्या सदाम्बिके' कहा गया है; क्योंकि शश्वद् भक्ति श्रेष्ठतम मानी गई है।

ऋषि कहते हैं :

हिमाचलसुतानाथ - पूजिते - परमेश्वरि।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि॥

अर्थात्, भगवती आद्या शक्ति का हिमालय-कन्या-पार्वती के पति भगवान् शंकर ने पूजन किया है। ऋषि उसी भगवती आद्याशक्ति से प्रार्थना करते हैं कि माँ हमें रूप, और विजय दो तथा हमारे शत्रुओं का नाश करो।

उपर्युक्त श्लोक का पूर्वार्ध वड़े महत्व का है। हिमालय सुतानाथ—हिमालय कन्या-पार्वती के पति शंकर भगवान् कैसे रहे होंगे और उन्होंने क्यों निस्स्वार्थ प्रार्थना की होगी? जब कि उन पूर्णकाम आत्माराम को किसी प्रकार की आवश्यकता ही नहीं है। फिर उन्होंने प्रार्थना किससे की? अपनी अर्धांगिनी आद्याशक्ति से। वड़ा मनोहारी दृश्य होगा वह! स्पष्ट है कि उनकी वह प्रार्थना एकमात्र अपने भक्तजनों के कल्याणार्थ ही रही होगी। उसमें उनकी दीन-दयालुता का उच्चतम भाव ही निहित होगा। यही कारण है कि उन्हें अपनी अर्धांगिनी की पूजा कर उससे प्रार्थना करने में तनिक भी संकोच का भाव पैदा न हुआ होगा; बल्कि परोपकार के मादक नशें में मस्त होकर ही उन्होंने ऐसा किया होगा; क्योंकि वे आशुतोष और भोले बाबाजी हैं। इसीलिए वे अपना खप्पर ले भक्तों की लक्ष्य-प्राप्ति के उद्देश्य से अपनी अर्धांगिनी के समक्ष भिक्षुक बनकर स्वयं खड़े हो गये। वे चाहते तो अपने किसी गण या गणों के पति गणपति को ही भेजकर श्री जी से चाहे जो मँगवा सकते थे। पर वैसे माँगने या मँगवाने में इतनी मादकता और मस्ती कहाँ होती? अपने मनमन्दिर के द्वार पर भक्तों के लिए भिक्षा माँगने के लिए खप्पर लेकर खड़े प्राणवल्लभ को उस आद्या जननी ने एक इशारे पर सब कुछ दे डाला।

हाँ, तो पुराने जमाने की यह वात है। आप ध्यानपूर्वक सुनिये। एक समय ऐसा आया जब सभी लोग उस सर्वव्यापी अनादि शक्ति को भूल बैठे थे।

ऐसे ऐसे दुर्धर्ष, मदान्ध, आसुरी प्रकृति के लोग उत्पन्न हुए कि पृथ्वी का सारा जन-जीवन अस्त-व्यस्त-सा हो गया। उसके परिणामस्वरूप धार्मिक, सदाचारी लोगों की ज्ञान-विज्ञान-निष्ठा और आस्तिकता का पालन भी दूभर होने लगा। फलत:, सर्वत्र धर्म का ह्रास होकर मानव भी परम उद्दण्ड बनकर दम्भवश उस विश्वप्रकृति की उपेक्षा करने लगा। अपनी शक्ति का गलत अन्दाज कर स्वयं को सर्वेश्वर समझने लगा। प्रकृति ने उनके दम्भ का मर्दन करने के लिए अनेक प्रकार के मुख्य-मुख्य उत्पादनों को अपनी केन्द्रभूता उत्पादन-शक्ति का स्रोत देना वन्द कर दिया। एक भीषण द्वन्द्व चल पड़ा।

तामसी, स्वार्थी प्रवृत्ति इतनी उग्र हो गई कि मदान्ध हो उसने ब्राह्मण, ऋषि आदि समाजधारकों के वचनों की अवहेलना कर सूर्य, चन्द्र, जल, तेज, वायु सभी के अधिकार छीन लिये। अधिकार-संचालन की योग्यता और परोपकार की भावना न होने के कारण उनका वे सदुपयोग न करके मन-माना उन्मुक्त दुरुपयोग ही करने लगे। इससे सारे विश्व में विनाश का ताण्डव नृत्य होने लगा। न तो जल में वह शक्ति रही कि तृषा शान्त कर सके और न अन्न में क्षुधा तृप्ति की शक्ति रह गयी। वायु से वह शक्ति जाती रही, जिससे प्राणियों की श्वास-प्रश्वास-क्रिया चलती है। सर्वंसहा धरित्री भी सर्ववीजहर्त्री वन गयी। अन्न के लाले पड़ने से यज्ञ—यागादि शुभ कर्म भी वन्द पड़ गये, जो मानव और देवों के लिए स्वर्ग एवं भूलोक में विभिन्न वस्तुओं के आदान-प्रदान के प्रमुखतम माध्यम वने रहे। सर्वत्र अवर्षण, अतिवर्षण, उत्पात आदि होने लगे। कहीं अत्यंत शीत, कहीं भीषण सूखा, इसप्रकार अनेक विकराल ज्वालामुखियों के रूप में विनाश का प्रलयंकर नृत्य होने लगा। सभी जीव ही नहीं, जड़-स्थावर पदार्थ भी इस महा उत्पात से थर्रा उठे।

तव, वचे-वचाये सर्वभूतहितैषी अंगुलिगण्य लोग हिमालय आदि की गुफाओं में जा देवता को माध्यम वना भगवान् आशुतोष शंकर को मनाने में जुट गये। उनका अर्चन-पूजनकर वेदमंत्रों से स्तुति करना शुरु कर दिया।

देव-मानवों की इस आर्त पुकार से भगवान् भोले वावा की समाधि टूटी। देव तथा मानवों ने अपनी-अपनी पूरी शक्ति लगाकर प्रभु की जय-जय कार की और अपनी असीम अवमानना, जन-उत्पीड़न और विश्व-अव्यवस्था से उन्हें परिचित कराया। आसुरी प्रकृति के इस वेजोड़ उपद्रव से विश्व को त्राण देने की वार-वार वे प्रार्थना करने लगे।

सृष्टि के प्राणवल्लभ शंकर दयार्द्र हुए। उन्होंने वड़े प्रेम से, पर अत्यंत विवशता भरे स्वर में सबको कहा : देवगणो, जिस कार्य में मेरी सहायता प्राप्त

करने के लिए इतने कष्ट उठाकर आप लोग यहाँ पधारे हैं, दुःख है कि उसे करने में मेरी शक्ति नहीं, यद्यपि मैं हृदय से उसे चाहता हूँ। बात यह है कि यह सारा विषय घरेलू प्रबंध का है। इससे मेरा कोई लगाव नहीं। यह सारा विषय तो राजमाता के प्रबंध के अन्तर्गत है। आप लोग देख ही रहे हैं कि मैं कितना फक्कड़ हूँ। मेरा घर शैलशिखर है। आसमान ही उसकी छाया है—छाजन है, मैं मृगचर्म पहनता हूँ। विषधर ही मेरे आभूषण हैं। भोजन के लिए भाँग-धतूरे के अतिरिक्त कोई वस्तु ही नहीं। भला मेरे पास कौन-सी चीज है जिससे मैं आपकी सहायता करूँ ? फिर भी आप लोग पूरा विश्वास ले मेरे पास आये हैं तो कुछ करना ही पड़ेगा। आप लोगों को मैं निराश नहीं लौटा सकता। मैंने तय किया है कि लोक-कल्याणार्थ मैं अपनी प्राणवल्लभा पत्नी जगज्जननी हिमालयसुता पार्वती अन्नपूर्णेश्वरी के निकट आप लोगों के साथ भिक्षा माँगने के लिए चलूँ। यदि आप लोगों को यह पसंद हो तो मेरे साथ आयें।''

फिर क्या पूछना था ? देवों ने भगवान् भोलेनाथ की जय-जयकार से गगनमंडल को गूँजित कर दिया। देवगण अपने अभीष्ट की सफलता की आशा से आनंदविभोर हो उठे। देवताओं ने अमर वाणी में, मानवों ने मानवीय भाषा में, शेरों ने दहाड़ कर, हाथियों ने चिग्घाड़कर यानी सभी चराचर दुःखी जीवों ने अपनी-अपनी भाषा में भगवान् शंकर की स्तुति की। सभी दुःखी थे, उन्हें एक परम सुदृढ़ आधार की आवश्यकता थी जो भगवान् शंकर के इस वचन से उन्हें मिल गया। परम करुणावरुणालय औघड़दानी बाबा शंकर के दरबार में किसी तरह का भेद नहीं। वे समानरूप से सबके लिए शिवशंकर हैं। असुरों को वे दण्ड जो देते हैं, वह भी उनपर उपकार की भावना से ही।

इसी कोलाहल के बीच नारदमुनि उठ खड़े हुए और अपनी वीणा को मन्द मन्द बजाते हुए एक पर्वत-कन्दरा के संकरे मार्ग से चल पड़े। द्रुतगति से वे कुछ ही देर में जगदम्बा के दरबार में आ पहुँचे। जगदम्बा का पावन दर्शन पाकर नारद ने अपने को कृतार्थ माना और उनसे निवेदन किया :

माँ, शीघ्र ही इतिहास का एक अभूतपूर्व स्वर्ण अवसर प्राप्त होने जा रहा है। आज आशुतोष भगवान् पशुपतीश्वर ने अपने भक्तजनों की दुरवस्था से द्रवित हो एक संकल्प किया है और उसे सफल बनाने के लिए अपार दुःखी समूह को साथ लिये आपके समक्ष भिक्षा-पात्र ले उपस्थित हो रहे हैं। उनके एक हाथ में डम-डम डमरु बज रहा है, दूसरे हाथ में भिक्षा का खप्पर है तो तीसरे हाथ में त्रिविध शूलों को मिटानेवाला त्रिशूल चमक रहा है और चौथा हाथ वराभयमुद्रा से भक्तों को आश्वस्त कर रहा है।

माँ, उनके डमरू की ध्वनि का मर्म चारों वेदों के आचार्य भी समझ नहीं सकते। पूर्वकाल में पाणिनि महर्षि ने उनके डमरू के कुछ शब्दों को पहचाना तो उन्होंने बहुत बड़ा शब्दशास्त्र व्याकरण ही बना डाला। आज उसके स्वर उससे भी अधिक सारभूत गोपनीय और महत्वपूर्ण हैं। मुझे तो लगता है कि वे आज डमरू की ध्वनि से आप को ही कुछ संकेत कर रहे हैं। उन्हें आपसे असुरों का वध जो करवाना है।

सोचने की बात है कि जिस हिमराज कन्या ने भगवान् शंकर को प्राप्त करने के लिए हजारों वर्षों तक घोर तपस्या की, मृण्मय पार्थिव लिंग बना-बनाकर सविधि पूजा की, सैकड़ों वर्ष निराहार और हजारों वर्ष एक पैर पर खड़ी होकर साधना की, कितने ही ग्रीष्म, वर्षा, शिशिरों में शीत, वर्षा, और ताप के द्वन्द्व सहे और अन्ततः बड़े कठोर साधन के फलस्वरूप अपने अनन्य मनोरथ भोलेनाथ को पाया वे ही आज इस प्रकार अतिथि बनकर और इतने बड़े लावलश्कर के साथ उसके दरवाजे पर भिक्षार्थ जा रहे हैं—यह संवाद सुनकर माता की मनःस्थिति क्या हुई होगी, यह तो कोई भारतीय पतिव्रता-शिरोमणि ही बता सकती है। जिनके पास पहुँचने पर संसार की सभी वस्तुएँ अनायास मिल सकती हैं, उनका भारतीय नारी के पास इस प्रकार पहुँचना कितना आश्चर्यप्रद हैं, यह कहने की आवश्यकता ही नहीं।

देवर्षि से यह मनोहारी अद्भुततम समाचार सुनकर उनकी अखण्ड बज रही वीणा की स्वर-लहरियों के संगीत के साथ माता ने क्षणभर आँखे मूँद लीं और वे आनन्दसागर में डूबने उतराने लगीं।

नारदजीने भगवती का गुणानुगान कर उनसे प्रार्थना की कि आप भगवान् शंकर के स्वागत की शीघ्र भव्य तैयारी करें। मैं जगत् के अन्य लोगों को यह शुभ समाचार सुनाने के लिए अब प्रस्थान कर रहा हूँ।

नारदजी के चले जाने के बाद भगवती उमा ने अपनी परम सखी लक्ष्मीजी का स्मरण कर उन्हें आमन्त्रित किया। ध्यानमात्र से लक्ष्मीजी वहाँ उपस्थित हो गयीं। माता गौरी ने उनकी अगवानी की और दिव्य उपायनों से उनका स्वागत किया।

स्वागत के पश्चात् बड़े प्रेम से कहा : प्रियसखी लक्ष्मी, अभी-अभी नारदजी एक अति अद्भुत संवाद लेकर आये थे। बड़ा ही रोचक है वह संवाद। सुनकर मैं इतनी पुलकित और आनन्दविभोर हो उठी कि मेरी सारी सुधबुध ही खो गयी। समझ नहीं पा रही हूँ कि ऐसे समय में मुझे क्या करना चाहिए ?

पद्मालया लक्ष्मी ने उत्सुकता के साथ कहा : हमें भी वह संवाद अपनी

सखी के श्रीमुख से सुनने की आतुरता झकझोरे जा रही है। शीघ्र मुझे उसे सुनाओ।

माता गौरी ने लज्जावश नेत्र नीचे कर लिये और संकुचित मुद्रा में वे लक्ष्मीजी से कहने लगीं। भावातिरेक के कारण पूरे शब्द भी उनके श्रीमुख से उच्चरित नहीं हो पा रहे थे। भगवती ने कहा : अभी कुछ देर हुई देवर्षि नारद पधारे थे। उन्होंने अपनी वीणा पर बड़े मार्मिक स्वरों में गाकर हमें सुनाया कि भगवान् आशुतोष सभी दुःखी समुदाय का नेतृत्व करते हुए उन्हें कल्याणकी भिक्षा दिलवाने के लिए मेरे द्वार पधार रहे हैं। बहन, जिस सुखद संवाद को सुनने के लिए मैं श्वास रोककर प्रतीक्षा कर रही थी, नारदजी ने अपनी कौतुकप्रियता के अनुसार उसे विविध छन्दों में क्षणभर में गा-गाकर सुनाया। अपनी मनःस्थिति को दबाये रखने का मेरा सन्तुलन टूटने लगा तो मैं आँखें बन्द कर बैठ गयी।

मेरी सलोनी सखी, उस संवाद में इतनी मादकता थी कि लगा कि भगवान् भोले के लिए घोट-छानकर रखी कटोरे की भांग को धोखे में उठाकर मैं ही पी गयी होऊँ। सखो, अत्यन्त प्रसन्नता से मैं अपना सन्तुलन खो बैठी हूँ। इसलिए समझ नहीं पा रही हूँ कि यहाँ पहुँचने पर मैं उनका और उनके अनुयायियों का किस प्रकार स्वागत सत्कार करूँ ? कहाँ आसन लगाऊँ ? कैसे पूजा करूँ तू ही बता कि इतने दीर्घकाल के बाद समाधि से जागृत होकर आये हुए अपने प्राणाधार को क्या मैं आँखें भरकर देख भी पाऊँगी या नहीं ? जब कि सुननेमात्र से इन नेत्रों को इतनी विकलता हो रही है।

सखी, त्रिभुवन के नाथ मेरे प्राणनाथ मुझसे अब क्या माँगने आ रहे हैं। मेरे पास अपना जो कुछ था वह पहले से ही उनके चरणों में अर्पित कर चुकी हूँ। अब क्या अवशेष रहा, जो उन्हें अर्पित करूँ? यही समझ में नहीं आ रहा है। कभी-कभी सोचती हूँ कि उनके कुछ माँगने के पूर्व ही अपने को, अपने देह को अर्पण कर दूँ। फिर ध्यान जाता है कि जब चित्त का दान हो गया तो उसका आयतन यह शरीर भी अपना कहाँ रहा ? किसी चीज में रखकर ही किसी का दान होता है। फिर अर्पित का पुनः अर्पण वचन की कपटमयी चातुरी ही कही जायगी जो किसी सती के लिए अपने नाथ के प्रति घोर वंचना मानी जायगी।

प्रियसखी, मैं इस समय भूल चुकी हूँ कि मुझे क्या करना चाहिए। मैं केवल इस समय एकान्तवासी भोले बाबा की भोली-भाली धर्मपत्नी मात्र हूँ। इसलिए सभी प्रकार के जागतिक व्यवहारों से सर्वथा अनभिज्ञ हो रही हूँ। तब सम्मान्य प्रिय अतिथि का समुचित स्वागत-सत्कार कैसे किया जाय ? हाँ, तू सुख-सम्पदा

की अधिष्ठात्री है । तेरे दरबार में स्वभावतः याचकों का ताँता लगा रहता है । इसलिए तू ही बता कि यह कार्य मैं कैसे सम्पन्न करूँ ?

माता महागौरी के भावप्रवणता से ओतप्रोत ये शब्द सुनकर कमलालया श्रीमहालक्ष्मी ने कहा : मेरी भोली भाली सखी, लेशमात्र भी इन बातों की चिन्ता न कर । केवल शान्तचित्त हो, स्नानादि से निवृत्त हो, भूषण-वसन धारण कर तैयार हो जा । सारी व्यवस्था का भार मुझपर छोड़ दे । मैं पलभर में सारा संयोजन किये देती हूँ । विलंब न करो, आज ही तो तेरे प्राणेश आनेवाले हैं ।

महालक्ष्मी के स्नेह सने वचनों से महागौरी कुछ आश्वस्त अवश्य हुईं, पर हृदय की व्याकुलता पूरी तरह मिट नहीं पायी । फिर भी सखी के प्रस्ताव पर वे स्नानार्थ चली गयीं ।

× × ×

महागौरी को स्नानार्थ विदा कर माता महालक्ष्मी ने देवशिल्पी विश्वकर्मा का आवाहन किया । स्मरण मात्र से विश्वकर्मा हाथ जोड़ सामने उपस्थित हो गये । महालक्ष्मी ने उन्हें आदेश दिया कि आनेवाले अतिथियों के गौरव का ध्यान रखते हुए भगवती महागौरी का प्रासाद पूरी तरह साज-शृंगार से सजा दें । वहाँ सभी इच्छित वस्तुओं का प्रचुर मात्रा में संयोजन कर दें । संक्षेप में अथ से इति तक स्वागत की ऐसी व्यवस्था अभूतपूर्वरूप में कर दें कि आनेवाले अतिथियों के रोम रोम विकसित हो उठे । यह सारा भार आप ही पर है ।

विश्वकर्मा ने नतमस्तक हो आज्ञा शिरोधार्य कर पल मात्र में सभी सुख-सुविधाओं से युक्त भव्य पुरी का निर्माण कर दिया । निवास प्रासाद की सफाई के लिये पवन देव को तथा धुलाई के लिए वरुण को नियुक्त कर दिया ।

श्री लक्ष्मी की इच्छा मात्र से वसन्त ऋतु अपनी सोलहो कला से आकर उपस्थित हो गयी । सभी वृक्ष नव पल्लवित, नव पुष्पित हो उठे । वे आनेवाले अतिथि के मार्ग के दोनों तरफ घनीभूत पंक्तिबद्ध हो झुक कर ऐसे खड़े हो गये कि सूर्यनारायण को चिंता होने लगी कि हमें भोलेनाथ के दर्शन कैसे होंगे ? वृक्षों ने तो कैलाश से भगवती के प्रासाद तक का सारा मार्ग अपने आंचल में इस तरह छिपा लिया जैसे कोई नवोढ़ा प्रथम नवजात शिशु को दूसरे की दृष्टि से बचाने के लिए अपने आंचल में छिपा लेती है ।

मार्ग के दोनों ओर स्वस्तिक चिह्नांकित सुन्दर मनोहारी क्यारियाँ गठित थीं और उसके बाद दोनों तरफ शान्त लहरों से बहती पुण्य सलिला नदियाँ मानों भगवान् भोले के दर्शनार्थ अपना सुनिश्चित पूर्व मार्ग त्याग लहरा रहीं थीं ।

कहीं-कहीं तो वे इतनी अमर्यादित हो रही थीं कि मार्ग तक पहुँच कर उस पथ से गुजरने वाले भोले का चरण स्पर्श प्राप्त हो। परन्तु अपनी मर्यादा का ध्यानकर पुनः किसी नवोढ़ा की तरह वे अपने को सम्हाल कर अपने स्थान पर आ जातीं। जिस समय वे इठलाती लहरें उस मार्ग पर चढ़ाई करतीं उस समय प्रस्फुटित अनेक रंग-बिरगे वृक्षों की छाया उनमें प्रतिफलित होती। लगता कि अत्यंत अल्हड़ ललना गहरी हरी बूटीदार साड़ी पहने दोनों हाथ पसार भगवान् की शरण आ रही हो।

उस छपी हुई साड़ी में किन किन रंगों के बेल-बूटे छाँपे हैं उन्हें आँखें नहीं गिन पायेंगी। उनकी केवल कल्पना की जा सकती है। वह इतना महान् आयोजन था कि उस दिन सारी प्रकृति उल्लास से दर्शन के लिये लालायित हो उठी थी। जब सभी वृक्ष पंक्तिबद्ध खड़े हो गये तो उनकी प्रेयसी लताएँ भी यह शुभ दर्शन पाने के लिए बड़े-बड़े वृक्षों के मस्तकों पर चढ़ कर प्रफुल्लित भाव से वृक्षों को गलबहियाँ डालें झूमने लगीं। मार्ग के जितने भी जलाशय थे सब सुस्वादु, शीतल जल से लबालब भर उठे ताकि आनेवाले भगवान् शंकर व उनके भक्तों को किसी प्रकार की असुविधा न हो।

आगन्तुकों के श्रम-निवारणार्थ वसन्त ऋतु पहले से ही डेरा डाले पड़ी थी जिससे वर्षों से तप्त वातावरण मनोहारी बन गया था। मन्द समीर मलयाचल की सुवास लिये प्राणिमात्र का स्वागत करने हेतु बहने लगा। सारा भूमंडल मोहक सुगन्ध से गमक उठा।

सभी राग-रागिनियाँ, देवता और देवांगनाएँ, यक्ष, गन्धर्व एवं नागर-कन्याएँ रूप, माधुर्य और लावण्य से युक्त हो दर्शनार्थ आ पहुँचीं। इन सभी की उपस्थिति के कारण कोकिला की कांकली भी कठोर प्रतीत होने लगी।

संक्षेप में आबाल-वृद्ध नर-नारी सभी चेतन एवं अचेतन प्राणीपदार्थ आकुल और व्याकुल हो भोलेनाथ के इस समागम का आनन्द लेने प्रकृति के प्रांगण में एकत्रित हो गये।

विश्व की निर्माणकर्त्री महालक्ष्मी जब अपना वरदहस्त उन्मुक्त कर दे और देवशिल्पी विश्वकर्मा जिस आयोजन के संयोजनका पूरा भार अपने ऊपर उठा लें वहाँ की शोभा-सुविधा के लिए पूछना ही क्या? यह तो हुई पूरे मार्ग द्वार तक की तैयारी। अब मां जगदम्बा गौरी महल में क्या कर रही हैं? द्वार की क्या शोभा है, उनके दर्शन करने चलें।

माता के पुण्य प्रासाद के द्वार के दोनों पट स्वर्ण से आवेष्टित है। उनपर

उभारदार नक्काशी है, जिसमें अत्यन्त कलापूर्ण देवांगनाएँ पुष्पांजलि लिये स्वागताभिवादन मुद्रा में प्रदर्शित हैं। द्वार के ऊपर तोरण है। अगल-बगल पोखराज को काट-छाँट कर विशाल सिंह वनाये गये हैं। उन केहरियों के स्कन्ध-केश हवा के झकोरों से उद्वेलित हो रहे हैं। दोनों तरफ केलों से परिपूर्ण खम्भे बाँधे हैं। उनके आगे स्वस्तिक अंकनों से युक्त कलश स्थापित हैं। फाटक के ऊपर ही मधुर वादन कक्ष है जिस पर से मधुर-मधुर सहनाई के शब्द प्रसारित हो रहे हैं।

मुख्यद्वार के भीतरी भाग में नील आकाश से आच्छादित विशाल प्रांगण के मध्य ५१ हाथ लम्बा और उतना ही चौड़ा तथा ३ हाथ ऊँचा मकराने संग-मरमर का चबूतरा बना है। उस चबूतरे पर एक और चबूतरा ५ गज चौड़ा और उतनाही लम्बा तथा ३ हाथ ऊँचा नीलम पत्थर का बना है। चबूतरे के चारों ओर कोर की झालर से १ वित्ता भीतर हटकर एक-एक गज के अन्तर पर एक ही आयु वाले स्वर्ण वर्ण सर्प अपने शरीर के १।८ वें भाग की गेडुली बाँध शेष शरीर को २ हाथ ऊँचा लहराती मुद्रा में किये हुए हैं और फण पसारकर अपना मुख मध्यवर्ती मंच की ओर किये हैं। चारों कोणों पर चार विशालकाय अजगर सरीखे फणदार पीले सर्प १० हाथ ऊँचे अपने सहस्र फण के चंदवा को ताने खड़े हैं। और छोटे-बड़े खम्भों की यह पंक्ति मंच पर चढ़नेवाली नव रत्नों की सीढ़ी के भी दोनों तरफ हैं। दो हाथ ऊँचे सर्प अपने मस्तक पर लहराती धामिनियों को टेंक दिये हैं जो कोने पर के बड़े सर्प को एक फेरा अपने अंग से बाँधकर आगे बढ़कर दूर से आनेवाले धामिनियों से संबंध जोड़े हुए हैं।

हरे वर्ण के सर्प छौने अपनी माता की यह दशा देखकर कि, माताओं को इतनी दूर कर दिया है विह्वल होकर दौड़ पड़े और जितनी भी धामिनें लहरा रही थीं उनके शरीर पर एक तारतम्य से एक फेरा दुम लपेट कर नीचे झूल गये। उनकी कभी न झपने वाली आँखें जुगनुँ के समान चमक रही थीं। चारों कोणों पर खड़े विशालकाय सर्प पधारने वाले महान् अतिथि की टोह करने की नियत से नीचे देखने के लिये अपने फण-प्रसारित अवस्था के कारण उनके नेत्र जो आसमान देख रहे थे—नीचे फेरते थे, तो उनके फण चलायमान हो जाते थे तो विदित होता था मेघमण्डल टकरा रहे हैं और उन सर्पों के अपलक नेत्र बिजलियों की तड़प पैदा कर देते थे। उन तमाम सर्पों की फुँकार एक सुमधुरगान कर रही थी जिससे वातावरण अत्यन्त मनोहारी था।

उस भव्य चन्दवे के मध्य एक स्फटिक शिला रखी है और उसपर व्याघ्र-चर्म बिछा है।

यह तो हुआ अतिथि-आसन का केंद्र स्थल। ऊपर वर्णित ५१ हाथवाले चबूतरे के बादही चारों तरफ सूर्यमण्डप की रेखा के समान लम्बे ५ हाथ ऊँचे मंच केवल देवांगनाओं, ऋषि मुनियों आदि के बैठने के लिए निर्मित थे। मण्डप की खड़ी रेखाओं के मध्य ढालनुमा सीढ़ियों की कतारें दर्शनार्थियों के सुखपूर्वक शान्ति से बैठकर समारोह का आनन्द लेने के लिए बनी थीं।

भगवती जिस समय स्नानागार से निकलकर श्रृंगार-गृह में जा रही थीं तो दालान में प्रतीक्षा में बैठी महालक्ष्मी ने आग्रह किया कि इसी समय आप भी चलकर एक बार स्वागत-सज्जा का निरीक्षण कर लें। भगवती ने सोचा यदि लक्ष्मी का अनुरोध टालती हूँ तो इनका दिल टूटेगा। अतः इच्छा न रहते हुए केवल लक्ष्मी के संतोष के लिये उनके साथ हो लीं। वे मुख्यमंच के पास पहुँचीं।

वहाँ का साज-श्रृंगार देखकर भगवती के नेत्र की पलकों ने गिरना ही भुला दिया। उन्होंने थोड़ी शीघ्रता में मञ्च पर पहुँचकर उस आसमानी घटा के ऊपर दृष्टि डालकर देखा और देखती ही रह गईं। चारों ओर घूम-घूम कर सारा दृश्य देखकर वे चकाचौंध में पड़ गयीं। अपनी सखी द्वारा इतनी भव्य स्वागत की तैयारी देख उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उनके प्रति कृतज्ञता से गौरी के नेत्र उनकी ओर न उठते थे।

सजावट के सौंदर्य को देखकर भगवती बिल्कुल स्तब्ध हो गईं और अत्यंत आश्चर्य से अभिभूत हो दो पग पीछे हटीं पर डेढ पग पर ही उन्हें चौकी का स्पर्श हुआ और वे उस स्फटिक की चौकी पर गिर पड़ीं।

शरीर के सन्तुलन को स्थिर करने के लिये भगवती ने पीछे हाथ टेंका तो उनके हाथ व्याघ्रचर्म पर पड़े और गदेली में एक मणि गड़ उड़ी। भगवती चौंक कर पीछे जो मुड़ी तो स्तब्ध होकर चित्रवत् लक्ष्मीकी सूझबूझ पर विस्मित हो मृगचर्म पर लेट गई प्रेमविभोर होकर। कुछ समय तो भगवती अपने अश्रु से उस मृगचर्म को अभिषिक्त करतीं रहीं। जब उन्हें और शरीर में मणियों के गड़ने का अनुभव हुआ और चेतना जागृत हुई तो तुरत भगवती ने घूमकर मृग-चर्म से उतर कर घुटना टेक तथा पञ्जे पर टिककर उस मृगचर्म के हर रोये को परखा। अपनी दोनों गदोली फिरा फिराकर और अपलक नेत्र से मृगचर्म के हर कालें बूटे को १०-१० बार छान डाला और इस बीच उनके नेत्र झुके रहने के कारण सीधे मृगचर्म पर अश्रु टपकते जा रहे थे। भगवती अत्यन्त पुलकित हो गई थीं।

जब भगवती इस अन्तिम तैयारी को संपादित कर रही थीं उस समय वे

यह सोचने में निमग्न थीं कि यहाँ इतने से अल्हड़ सर्प छौने एकत्रित होकर आनन्दातिरेक में झूम उठे हैं। उनकी ही मणियाँ गिरी होंगी जो भगवान् भोले को गड़ जातीं, अच्छा हुआ जो लक्ष्मी के अनुरोध पर मैं यहाँ आ गई। लीजिये यह महान आश्चर्य तो देखिये। इस अंतिम एवं एकमात्र सेवा का गौरव भी हमींको प्राप्त हुआ। न यह कहती और न मैं आती। झटके में उठ हर्षोन्माद में हाथ फैला दौड़कर लक्ष्मी को बाहों में बाँध लिया और श्रृंगारगृह में चली गईं।

पाठक यहाँ जानना चाहते होंगे कि वह तैयारी किस प्रकार की थी जिससे संसार की सृजनहार भगवती भी उससे मुग्ध हो गईं। पाठकों की जिज्ञासा शान्त करने के लिए हम उसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ कर रहे हैं। पूर्ण वर्णन करना क्या सम्भव है?

इस सजावट में ध्यान रखा गया था कि सुन्दर जलवायु, छाया-विश्राम-स्थल आदि सभी के बैठने व खड़े होने के लिये उचित व पर्याप्त स्थान हो। यह सारा प्रबन्ध शक्ति के आदेश से श्रीलक्ष्मी ने सम्पादित कराया था। इसलिये इसमें स्त्रियों के स्थान व सुख-सुविधा का विशेष ध्यान रखा गया था।

इस प्रकार वर्गीकृत स्थान सभी वर्गों के लिए सुनियोजित थे।

देवताओं के लिये अलग, ऋषियों के लिये अलग तथा देवांगनाओं एवं ऋषि-पत्नियों सहित नाग व गन्धर्व-ललनाओं के लिये ऊँचे मंच का निर्माण जो पीछे लिखा जा चुका है उसके अनुसार अलग नियोजित थे।

जिन समूहों में अग्रगण्य उर्वशी, मेनका, रम्भा आदि प्रख्यात अप्सरायें भी विद्यमान थीं और इन सभी के लिये ऐसी चातुरी तथा कला से स्थान का गठन किया गया था कि सभी को अपने स्थान पर बैठे-बैठे अपनी-अपनी भाषा और प्राप्त गुणविद्या-नृत्यगानवेदोच्चारणादि द्वारा शंकर के पधारने पर अपनी बुद्धि व लगन द्वारा स्वागताभिवादन कर सकें।

स्त्रियों के बैठने का स्थान इस समारोह को समुन्नत बनाने के ख्याल से मञ्च के चारों तरफ खड़ी लहराती हुई दशा में पाँच हाथ ऊँचा बना था ताकि मञ्च पर होने वाला कार्यक्रम उन्हें अवलोकन करने में कोई कठिनाई न हो।

सभी मञ्च मुख्य मञ्च को मध्य मानकर सूर्य मंडल के समान देदीप्यमान हो रहा था, जिसकी शोभा अपार थी।

उन मञ्चों पर देवांगनायें बहुमूल्य अलभ्य रत्नों से आवेष्टित तथा नाग व गन्धर्व-कन्यायें सभी श्री भोलेनाथ के आगमन की प्रतीक्षा में अपने नेत्र श्रीनटवर के आनेवाले सीधे व लम्बे मार्ग पर बिछायें बैठी थीं और थोड़े-थोड़े अन्तर पर फाटक की तरफ से अपनी दृष्टि समेट कर महामाया के मञ्च को देख लेतीं थी कि

वे पधारीं कि नहीं। यह देखने को जव अपने विस्फारित और चञ्चल नेत्र इधर-उधर फेरती थीं तो विदित होता था कि श्याम घटा के बीच दामिनी दमक रही है और उनके शुभ शरीर पर जो रत्नजड़ित आभूषणादि थे उन पर जव नेत्र रूपी दर्पण का प्रकाश प्रतिविंवित होता था तो यही बोध होता था कि नीलांवर में जो तारागण हैं वे दीप्यमान हो रहे हैं।

संक्षेप में, शक्ति की अनुकम्पा से देवशिल्पी विश्वकर्मा यहाँ अपनी कला को ऐसा निखार देने में समर्थ हुए थे कि विदित हो रहा था कि प्रकृति सारे विश्व की सुख-संपदा' एक वड़े थाल में सजाकर सृष्टि के आदीश्वर को समर्पण करने आ खड़ो हो। प्रकृति ने इतनी सुन्दर व्यवस्था की कि न तो कोई धूप से पीड़ित हो सकता था, न शीत या वायु से। ऐसा दिव्यसंयोजन करने में कौन समर्थ हो सकता है?

अव हम आगे चल कर मार्ग में ही आनेवाले अतिथि का स्वागत करें।

स्वागतार्थ मुख्य द्वार से सौ कदम आगे मार्ग पर आते ही वेदध्वनि सुनायी पड़ी। वाद्यों की ध्वनि क्रमशः कानों में पहुँची। कुछ ही समय वाद वह दृश्य आँखों के सामने आ गया जिसकी चिरकाल से प्रतीक्षा की जा रही थी।

भगवान् भोले अपार जीव-जन्तु तथा जन-समुदाय के वीच एक अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट, शुभ्र वर्णधारी सुन्दर बैल—नन्दिकेश्वर पर विराजे आ रहे हैं। उस गणाधीश के ही अत्यन्त सुडौल, नोकदार सींग श्रृंगी और भृंगी दो गणों से लग रहे हैं। वैल पर विराजमान साकार शिव के दोनों पैर लटक रहे हैं। पैर के ऊँगूठे के अग्र भाग पर रक्त वर्ण की वारीक रेखाओं में स्वस्तिक चिह्न अंकित हैं। उसी अँगूठें और वगलवाली अँगुलि में फँसे चन्दन के कलापूर्ण खड़ाऊ इधर-उधर अव्यवस्थित से झूल रहे हैं।

चरण के ऊपर दृष्टि मुड़ने पर सुराही की गर्दन के समान फिल्ली और उसके ऊपर घुटने सुशोभित हो रहे हैं। घुटनों से ऊपर कदली खम्म की चिक्कणता लिये सुपुष्ट सुस्वस्थ जघाएँ हैं, जो केहरी चर्म से किंचित ढकी होने पर भी अपनी मोहकता में कोई कमी नहीं करतीं।

उसके ऊपर सुन्दर कटिभाग है जिस पर केहरी का चर्म लपेट रखा है। उसे वाँधें रखने के लिए विशाल सर्प भी वहीं लिपटा हुआ है। सुन्दर कटिभाग के ऊपर त्रिवलीयुक्त उदर है और उसके ऊपर प्रशस्त वक्षस्थल है, जिसके दोनों ओर रुद्राक्ष, मन्दार और वेल पत्रादि की मालायें लहरा रही हैं। नीलकंठ के ऊपर सैकड़ों सूर्य के तेज के समान मुखमंडल की छवि है। नासिका के थोड़ा ऊपर भाल के मध्य द्वितीया के वालचन्द्र के कटोरे में सुषुप्त भगवान् का तृतीय

प्रलयंकारी नेत्र चमक रहा है। चन्द्र की शीतलता अपनी लहरों से उसे शान्ति दे रही है। इसलिए वह नेत्र अपने प्रलयंकारी तेज को सुपुप्त हो बनाये हुए हैं, अन्यथा भीषण प्रलय मच जाता।

उनके भाल पर लगी भस्म की तीन रेखाएँ त्रिलोक का भास करा रही हैं। वाम स्कन्ध से दक्षिण कटिभाग तक लटकता शुभ्र यज्ञोपवीत सप्त समुद्रों का प्रतीक बन रहा है। भाल पर धूर्जटा (हलके भूरे रंग की जटा) घुमाव देकर स्तूपाकार बँधी है। उस घुमावदार जटा में घूमती, इतराती इठलाती नीचे की ओर चली जा रही गंगा की धारा ऐसी मनोहारी लग रही है कि मन वरबस मुग्ध हो उठता है। गंगा की उत्ताल तरंगों में पड़े चन्द्र का प्रतिबिम्ब ऐसा लगता है कि कोटि चन्द्रों का समूह गंगा में तैर रहा है। तरंगों की उछाल से छटक कर जल विन्दु उनके बिखरे कुछ केशों के उग्रभाग में फँस जाते जो मुक्ता के समान चमक उठते हैं। उन विन्दुओं पर जब भोलेनाथ के मुखारविन्द का तेज पड़ता है तो उनसे नील, रक्त व पीली आभा प्रस्फुरित हो उठती है, जो मन को मोह लेती है।

इस छवि का अवलोकन करने के लिए जटा में लिपटे नागराज वासुकी ऊँचे उठ-उठकर जलतरंगों के शब्द को तुमड़ी का शब्द समझकर झूम पड़ते हैं। उस समय चन्द्रमा और गंगा के बीच प्रसृत उनकी फण की परछाई गंगा में पड़ने लगती है। मालूम पड़ता है मेघ मण्डल प्यासे होकर सरिता तट पर मंडरा रहे हों।

प्रशस्त एवं सुगठित उनकी दोनों भुजाओं पर दो हरे वर्ण के युवा सर्प अपनी लपलपाती जिह्वाओं में कोमल विल्वपत्र पकड़े रेंगकर शंकर के मस्तक पर उसे चढ़ाने के असफल प्रयत्न में अनवरत रत हैं। गंगा अपने अधिकार में अब किसी गैर को साझीदार बनाना नहीं गँवारा करना चाहती मानों इसीलिये उसकी उत्ताल तरंगें बार-बार चढ़ रहे उन दोनों सर्पों को अपनी तरंगों की चपेट से नीचे ढकेल दे रही हैं। पर वे हार मानने को तैयार नहीं दीखते और प्राणपण से अपने प्रयास में व्यस्त है। लहरों के थपेड़ों की जैसे उन्हें चिन्ता ही नहीं है।

दो छोटे-छोटे स्वर्ण वर्ण के नाग छौने अपने-अपने मुखों में रुद्राक्ष पकड़े हुए हैं जिनके अगल-बगल कभी न झपकने वाली आँखें मणि के समान शोभित हो रही हैं। वे भगवान् के कान पर अपने को कुण्डल के समान लपटे हुए हैं। दोनों कानों के ऊपर अत्यन्त विकसित नीले धतूरे का पुष्प अत्यन्त शोभायमान हो रहा है।

भगवान् के वगल में त्रिशूल है। बायें हाथ में भिक्षापात्र ले और दाहिने हाथ से डमरू डिमडिमाते भगवान् भोले पधार रहे हैं।

ऐसा सुन्दर कमनीय स्वरूप धारण किया है आज भोलेनाथ ने कि जिसे देवासुर किन्नरादि हजारों वर्ष तपश्चर्या करने पर भी देख नहीं पाते। आज उन्हें प्राणप्रिया अपर्णा से अपने भक्तों के कल्याणार्थ कुछ प्राप्त करना है। उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त हो इसीलिये उन्होंने वड़ा ही कमनीय स्वरूप धारण किया है। उस रूप की कल्पना करने में वड़ा से वड़ा मस्तिष्क और ग्रहण करने में वड़ा से वड़ा हृदय तथा लिखने में सरस्वती के हाथ की लेखनी भी कभी अक्षम हो जाती है। पुष्पदन्ताचार्य का यह श्लोक वरवस ही याद हो आता है :

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमूर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति॥

इधर तो भक्तवत्सल भूतपति भोलेनाथ अपने गणों और सभी देव-असुरों, चराचर संसार के सभी प्राणियों को साथ लिये श्रीजगज्जननी महामाया के मन्दिर-द्वार पर पहुँच रहे हैं और उधर महामाया की विचित्र स्थिति है। भगवती जगज्जननी आशुतोष शंकर का आगमन सुनकर दर्शन के लिए इतनी लालायित हो उठी हैं कि उन्हें यह विस्मृत हो गया कि मुझे क्या करना है।

महालक्ष्मी सभी प्रवन्ध पूर्ण करके भगवती के श्रृंगार-गृह की ओर चल पड़ीं कि इसी बीच भगवान् भोले के जयजयकार के गगन वेधी नारे सुनाई पड़े। वे चिन्तित हो उठीं कि अभी तक शक्ति का श्रृंगार पूरा हुआ या नहीं। किन्तु भगवती गौरी भी जयजकार के शब्द सुन श्रृंगार-गृह से शीघ्र वाहर निकल पड़ीं। महागौरी ने पति के दर्शन के अपार उल्लास में श्रृंगार तो किया, पर आभूषणादि कहीं के कहीं धारण कर लिये। महालक्ष्मी को यह देख हँसी आयी पर उन्होंने उसे सम्हाल लिया ताकि गौरी बिगड़ न उठे और पुनः जाकर सजने में अनपेक्षित विलम्ब न हो जाय। उन्होंने सन्तोष कर लिया कि भावभूखे प्रभु के आगे उलटा-सीधा कोई महत्व नहीं रखता। उलटे भाग को वे सीधा कर लेते हैं तो आभूषणों की वात ही क्या ?

महालक्ष्मी ने यह भी सोचा कि भगवान् भोले ही इस भूल को देखेंगे तो उन्हें जगदम्बा की इस भूल पर हँसी आये बिना नहीं रहेगी। फिर जब रुद्ररूप शंकर ही हँस पड़ेंगे तो सारा ब्रह्माण्ड हँस पड़ेगा, सारी सृष्टि भी लहलहा उठेगी; क्योंकि

भोलेनाथ का उन्मत्त मदमस्त हास्य ब्रह्माण्ड में सुख व समृद्धि देता हैं जिसकी आज नितांत आवश्यकता है।

यही महालक्ष्मी की दूरदर्शिता थी, जिसे दृष्टिगत कर महागौरी को नहीं बताया और वैसे ही साथ लेकर द्वार पर पहुँची।

भक्तवत्सल भूतपति भगवान् भोले बाबा अपने गणों और समस्त प्राणी समुदाय के साथ श्री जगदम्बा के द्वार पर आ पहुँचे। आते ही उन्होंने अपने डमरू से डिमिक डिमिक — डं डं का विचित्र सूत्रमय सांकेतिक गूढ़ शब्द बजाना शुरू किया। सुनते ही भगवती चंचल हो उठीं और सामने खड़ी महालक्ष्मी की ओर कातर दृष्टि से देखने लगीं।

महालक्ष्मी ने महागौरी के नेत्रों में उनके मनोभाव पढ़ लिये। भगवती ने जब पथ पर बिछे अपने नेत्र धीरे से ऊपर उठाये तो उठने के पूर्व ही उन्हें भगवान् भोले के युगल चरणकमल खड़ाऊँ पर दिखाई पड़े और भगवती इतनी पुलकित हो गईं कि बड़े हीं क्रम से धीरे-धीरे उनकी दृष्टि ऊपर उठते-उठते जब भगवान् भोले के नेत्र से जा टकराई उस वक्त उनके नेत्र पूर्ण विकसित हो चुके थे और अपलक विस्फारित अवस्था में थे।

इस समय भगवती की मुद्रा इस प्रकार थी कि उनका बायाँ पग कुछ आगे व दायाँ कुछ पीछे था। दायाँ हाथ उन्मुक्त कुछ आगे व दाहिना हाथ उसी प्रकार सीधा उन्मुक्त बायें की कलाई तक पहुँच कर पधारने के लिये स्वागताभिवादन कर रहा था। बस बाकी शरीर भगवती का चित्रवत स्थिर था।

अब दो महान् शक्तियाँ आमने-सामने खड़ी थीं। भगवान् भोले भगवती का शीघ्रता में किये गये शृंगार की विचित्रता देखकर कुछ मुसकुरा रहे थे, पर भगवती के विस्फारित नेत्र उन्हें उन्मुक्त हास्य रत होने का मौका नहीं दे रहे थे।

बड़ा ही मार्मिक एवं मूक अभिवादन भगवती की ओर से हो रहा था। उनके विस्फारित नेत्रों ने जैसे भगवान् भोले को स्तम्भन मंत्र से स्तब्ध कर दिया हो। इन विशाल भावपूर्ण नेत्रों ने ऐसा प्रभावशाली मूक अभिवादन किया कि उससे चर-अचर के सर्जनकर्ता भावविभोर हो गये। उनके अंग ऐसे स्थिर हो गये मानों वे चित्र के हों।

१—भगवती का उन नेत्रों की भाषा में पहला कथन यह था कि—आँखें बिछाकर बाट देखते-देखते ये इतना थक गई हैं कि इनके पलकों से उठा बैठा ही नहीं जा रहा है—खुली ही प्रतीक्षा करते रहने के कारण हवा ने इनका सारा जल सुखा दिया है। अब आपही बतायें कि मैं चरण धोने के लिए भला जल किस कमल से निचोड़ूँ ?

२—दूसरा व्यंग था कि भला भक्तों के वहाने दर्शन देने की फुर्सत तो मिली।

३—तीसरा संकेत था उन नेत्रों का—"मैं वड़ भागी हूँ कि आप सामने इस रूप में खड़े हैं।"

४—चौथी भाषा नेत्रों की यह थी कि—इतना श्रम किसलिये ? अगर इतनी आवश्यकता थी तो गणेश से सन्देशा भेज दिया होता तो मैं स्वतः कैलाश पहुँचकर सारे विश्व की संपदा श्रीचरणों में अर्पण कर अपने को कृतार्थ करती।

५—पाँचवाँ बड़ा ही मार्मिक व्यंग था उन नेत्रों का जिसे भगवान् भोले ने बड़ी ही कठिनता से झेला। भगवती ने नेत्रों के माध्यम से कहा कि जो अपना तन-मन-धन सभी कुछ पहले ही अर्पण कर चुका हो उसी से फिर और कुछ लेने में संकोच का अनुभव नहीं किया ? और यह रचना रची ? विश्व के लोग भले ही आपको भोलेनाथ कहें पर मैं तो श्रीमान् को हृदयहरनाथ ही कहूँगी।

भगवती का व्यंग इतना मार्मिक था कि उसका अनुभव कर आशुतोष ने तिलमिलाकर भगवती से मिले नेत्र को तुरन्त खींच पृथ्वी पर झुका दिया। बस ठीक इसी वक्त को उपयुक्त जानकर महालक्ष्मी ने आगे बढ़कर उसे नील-मणि के बने कमंडलु को सामने किया जिसमें गंगा छुपी बैठी थीं जो शंकर के घुमावदार जटा में घूमते-घूमते चकरा कर ऊब चुकी थीं। इसलिए आज वे चुपके से भगवान् भोले के चरण को चूम लेने को मचल उठीं थीं। क्योंकि वे स्वच्छन्द प्रछन्द विचरणशील प्रकृति की हैं—कभी विष्णु के अंगूठे में वास करतीं, कभी भोले की जटा में, तो कभी ब्रह्मा के कमंडल में, कहीं स्थिर रहती ही नहीं, बड़ी ही चंचल हैं।

ज्यों ही लक्ष्मी ने एक पग आगे बढ़ कर उस नील मणि में बैठी गंगा सहित कमण्डलु को दोनों हाथों पर रखे हुए उसे स्पर्श कराया तो भगवती का सोचना रुक गया। (भगवती अब तक अपने समक्ष खड़े भोलेनाथ का वास्तविक रूप देखकर दयार्द्र हो उठीं) जब वे कुछ करने ही वाली थीं कि उसी वक्त कमंडलु का स्पर्श होने पर कमण्डलु की तरफ देखा तो उसमें छुपी गंगा दृष्टिगत हो गईं। भगवती उसकी चातुरी पर रीझकर हँसते हुए लक्ष्मी से कमण्डलु न लेकर बड़ी ही कोमल मुद्रा में लक्ष्मी की ठुड्ढी में कोमल हाथ लगा कर ऊपर उठाया और कहा जरा देख तो इसमें कौन छुपा बैठा है। मैं जानती हूँ कि यह तुझसे छुप नहीं सकती थी पर तेरा ध्यान तो हम दोनों की मूक भाषा में लगा था तो भला तू इस चोरको कैसे देख पाती ? इसमें तेरा कोई दोष नहीं है।

इतना कह भगवती ने हर्षातिरेक में लक्ष्मी को गले से लगा लिया। लक्ष्मी के

दोनों हाथ फँसे थे कमंडलु को आधार दिये । पर जब भगवती चोर पकड़ लेने की उमंग में लक्ष्मी से लिपटीं तों लक्ष्मी के हाथ से कमंडलु गिर पड़ा और गंगा त्राहि त्राहि कर भगवती के चरणों पर लोट पड़ीं कि मुझे क्षमा कर दो भगवती । मैं लालचवश अपना होश खो चुकी थी । यह सब शनि महाराज की कृपा थी; क्योंकि शनि रूपी नीलकमंडलु से मैं घिर गई थी ।

भगवती ने गंगा को उठाकर चूमते हुए झट शंकर के माथे की तरफ लोका दिया । जब शंकर ने देखा तो वे घबरा कर थोड़ा पीछे हटे । भगवती ने समझा भोलेनाथ रुष्ट होकर जा रहे हैं। वे जो दाहिने घूमी गंगा को लोकाने के लिये तो जटा तक गंगा के पहुँचने के पूर्व ही भगवती के कमल-रूपी-नेत्रों से छटक कर अश्रु बूंद भोलेनाथ के चरण को धो लेने में समर्थ हो गये ।

और अब भगवती भगवान के दोनों हाथ पकड़कर उलटे पैर मंच की ओर उन्हें लेकर धीरे-धीरे मन्थर गति से चल पड़ीं ।

जब भगवान भोले को भगवती के करस्पर्श से शक्ति प्राप्त हुई और वे एकाग्र हो निकट से उलटे फूलों एवं आभूषणों में उन्हें लिपटी देखा तो देखते ही भगवती का हाथ छोड़ थोड़ा पीछे हटकर दाहिने हाथ की अंगुलियों से बायें हाथ की गदोली पर स्फुर्ति से ताल देते हुए दाये हाथ को ऊपर उठा बड़ी सुन्दर मुद्रा बना लिया । इसके साथ ही उनका दाहिना पग भी घुटने से मुड़कर पृथ्वी से १ हाथ ऊँचा हो गया और बाम हाथकी तर्जनी से भगवान् भगवती के उलटे पुलटे पहने आभूषणों को इंगित कर न मालूम किस गूढ़ राग को गाकर भगवती की भूल बता दी और खूब खुलकर हँस पड़े । मां सुन्दर साड़ी में लिपटीं दाहिने हाथ की तर्जनी का अग्रभाग यत् किंचित दाँत से पकड़े और दूसरे हाथ से गले में पड़ी सोने की जडाऊ करधनी को मुट्ठी में मर्दन करते हुए अपने नेत्र कोण ऐसे पृथ्वी में गड़ाये कि कनखी से भगवान् नटराज का मनोहारी नृत्य भी दिखाई देता रहे ।

जब भगवती ने सारी बातें उस नृत्य के माध्यम से जान लीं तो वे कुछ झिझकती हुई हँसते हुए अपनी भूल पर नतमस्तक हो भगवान् भोले की ओर तरेर कर देखा । भगवान को भगवती के दो नेत्रों में विश्व की सारी विभूतियाँ उमड़ पड़ी दिखाई दीं—और दोनों स्वच्छंद हो हंस पड़े ।

यह सारा नाटक जो द्वार से आ रहे मार्ग पर हो गया, वह अत्यन्त मनोहारी रहा । सारा विश्व उस वक्त हँस पड़ा, लहलहा उठी वसुन्धरा, बीजहारिणी से मनोहारिणी हो उठी । सारा विश्व शिवशक्ति के जयजयकार शब्दों की प्रतिध्वनि से वर्षों तक गुंजयमान होता रहा जिससे सारे विश्व में प्राणवायु फूँकी

जा रही हो उस जयजयकार की गुंजन ध्वनि में। वह ऐसा आकर्षण था कि सारी वसुन्धरा उर्वर हो गई, पौधे ऐसे बढ़ने लगे जैसे सेवई पंचपात्र से निकल रही हो। इस प्रकार ही भगवान् भोले के माँगने के पूर्व ही सारे विश्व का कल्याण को उठा।

अब भगवती भोलेनाथ का एक हाथ पकड़े मंच वाली नवरत्नों से बनी सीढ़ियों पर धामिनों और सर्पों से बनाई रेलिंग पर बायाँ हाथ सहलाते चढ़ रही थीं।

उसी सीढ़ी पर चढ़ रही भगवती की लाल साड़ी पर जब रेलिंग के रूप में सर उठाये धामिनियों की लहराती हुई अवस्था में खड़े उन सर्पों की छाया पड़ती थी तो विदित होता था कि भगवती ने बूटेदार ही नहीं, धारीदार साड़ी भी पहन रखी हैं।

अब भगवती मंच के ऊपर पोखराज पत्थर के बने ४ बैलों के पायेवाली स्फटिक की बनी चौकी के पास पहुँच उस पर बिछे व्याघ्र चर्मपर (जो तपे हुए स्वर्ण वर्ण का अत्यंत चमकीला और काली कालो चित्तियों वाला है) बैठाना चाह रही हैं; परन्तु भोले नाथ तो जैसे कुछ झिझक कर उस मृग चर्म पर बैठने से कतरा रहे हों।

भगवती को बड़ा विस्मय हुआ कि ऐसी कौनसी डरावनी परिस्थिति एकाएक उत्पन्न हो गई कि भगवान् सत्कार स्वीकार करने से बच रहे हैं या कोई अनादर हो गया। कुछ समझ में नहीं आ रहा था।

भगवान् को उस मृगचर्म के हर काले बूटों में भगवती के विस्फारित नेत्र दृष्टिगोचर हो रहे थे। भगवान भोले उन नेत्रों के जाल में फँसना नहीं चाहते थे। वे सोच रहे थे कि युगल नेत्रोंने फाटक पर ही ऐसी छाप छोड़ी है जिसे भूलाया नहीं जा रहा है तो इतने सारे नेत्रों की कैद से अचिरात् उद्धार तो होगा नहीं और यदि बीच ही में सृष्टि का कहीं संहार करना पड़ा तो ?

इसी ऊहापोह में वे चौकी के चारो ओर घूमते हुए मृग चर्म को घूर रहे थे। अन्त में भगवती दुखी होकर किं कर्तव्य हो चित्रवत् खड़ी उस परिस्थिति को देखते देखते रो पड़ीं। तभी एक विचित्र घटना हो गई। मृगचर्म के सारे नेत्र आँसुओं से भरे प्रतिलक्षित होनेलगे जिसे देखते ही भोलेनाथ का धैर्य छूट गया और वे आतुरता से चौकी पर चढ़कर उस व्याघ्र चर्म पर आरूढ़ हो गये। जल आ जाने के कारण सभी नेत्र धूमिल पड़ गये थे और भोले नाथ ने

सोचा भगवती ने नेत्र मुद्रित कर लिये हैं। इसलिये जेल के फाटक के वाहर ही डेरा जमाना अच्छा होगा।

आप माने या न माने उपर्युक्त विषय केवल कल्पना की उड़ान मात्र नहीं है– उसमें भी वैज्ञानिक गूढ़ आधार अन्तर्निहित है। उसे अच्छी तरह समझें।

ऊपर लिखा जा चुका है कि तैयारी के निरीक्षण के लिये जब लक्ष्मी ने गौरी से अनुरोध किया था तब भगवती ने बेमन केवल लक्ष्मी का दिल न टूटे इसलिये स्वीकार कर लिया था और उनके साथ चल पड़ी थीं। सारी तैयारी तो भगवती यत् किंचित ही देख पाई थीं। पर मुख्य मंच पर पहुँच कर लक्ष्मी की दूर-दर्शिता पर वाग-वाग होकर स्तब्ध हो गई थीं। दो पग पीछे हटते समय चौकी का अवरोध पड़ जाने के कारण उसी पर धम से उन्हें बैठ जाना पड़ा था और सन्तुलन संभालने के लिये उन्होंने जब हाथ टेका था तो दायें हाथ की गदोली व्याघ्र चर्म पर पड़ी थीं और उसमें १ छोटी मणी जो किसी उतावले सर्प की गिर पड़ी थी, गड़ गई थीं। भगवती ने उसे चुनकर वाहर फेंक दिया था। चौकी पर गिर कर भगवती की दृष्टि जब ऊपर उठी थी तो उन्हें ऊर्ध्वमुखी सहस्रानन सर्पों के फण से बना चन्द्रमा दिखाई पड़ा था।

और उसी समय जब उन चारों सहस्रमुखी नागों ने भगवती का अभिवादन करने के लिए अपने मस्तक झुकायें तो भगवती की विदित हुआ कि घोर बादल फट गये और मेघ-मंडल चलायमान हो पड़े हों। क्योंकि चारों फणों के टकराव से उसमें गर्जन भी हो रहा था तथा फुफकार के शब्द वंशीवाली आँधी का भास करा रहे थे। इसलिये कि उन डोररूपी धामिनों पर लटक रहे सर्प के छौने जो वन्दनवार बने नीचे मुख किये लटक रहे थे स्तम्भ रूपी चारों सर्पों के चलाय-मान होने पर सभी फूल उठे और हिलने लगे। उस वक्त उन सर्पों के मणियों का तेज दामिनी का बोध करा रहा था। उसे देख भगवती आनन्द-विभोर हो पड़ी थीं। ऊपर की शोभा देख-देख लक्ष्मी की सारहना मनही मन करने लगीं। उस विछे मृगचर्म पर कोई मणी और न हो और भगवान् के कोमल अंग में चुभ न जाय अत: उन मणियों की खोज करने को भगवती तुरत उठ बैठी। दोनों घुटने और पंजे के अग्रभाग पर टिक कर उन्होंने मृगचर्म ने एक-एक रोंये को परखा, गदोली फेर फेर कर देखा। उनकी दृष्टि रोमावली की तलहटी (जड़) तक पहुँच रही थीं।

सज्जनों का तो स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे दूसरों को होनेवाले सम्भावित कष्टों को निर्मूल करने में अपनी तमाम इन्द्रियों और तमाम सूझ-बूझ का उपयोग कर डालते हैं।

इतनी तन्मय हो भगवती उपर्युक्त परिस्थिति में कार्यरत रहीं तो आप सोचें कि उनके अपलक विस्फारित नेत्र उन काले धब्बों पर अवश्य पड़ें होंगे और ऐसी सूरत में भगवती के नेत्रों का प्रतिविम्ब उतर आना असम्भव नहीं है। क्योंकि हर काले पदार्थ में सिलवर नाइट्रेड होने के कारण वह प्रकाश परिग्राही होता है।

आज भी, इस शताब्दि के जन भी सिलवर नाइट्रेड का घोल कांच पर या फिल्म पर प्रकाशहीन स्थान में (डार्करूम में) नीली या लाल रोशनी के सहारे चढ़ाकर उसे प्रकाशहीन कैमरे में प्रकाश से सुरक्षित दशा में चढ़ा देते हैं। कैमरे की फिल्म के निर्माण की यही विधि है। उस पर ज्योंही प्रकाश की रेखायें पड़ती हैं त्योंही उन रेखाओं के वृत्त में आनेवाले वस्तु का प्रतिविम्व अंकित हो जाता है, जिसे फोटो कहते हैं।

इस प्रकार भगवती की गदोली शटल का काम कर रही थी। नेत्र प्रतिविम्ब एक फोकस मिलाये काले धब्बे से साक्षात्कार कर रहे थे और लेन्स तो अत्यन्त शक्तिशाली भगवती के विशाल नेत्रों में ही विद्यमान थे। फिर कैसे प्रतिविम्ब असंभव हो सकता है।

जब उपरोक्त तमाम परिस्थितियाँ विद्यमान हों तो कैसे कहा जा सकता है कि भगवान् भोले को व्याघ्रचर्म के हर काले धब्बों में भगवती के विस्फारित नेत्र नहीं दिखाई पड़े होंगे। अतः यह केवल लेखक की कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता है।

अगर उपरोक्त कारणों की आप कल्पना ही मान लें तो भी यह तो निःसंकोच मानेंगे कि जो आदिशक्ति यहाँ तक कि समुद्र गर्भ के तल के भीतर के अनेक प्रकार के प्राणी-जीव जन्तु को प्राण एवं चेतना देती है और उनके सुख-सुविधा तथा पोषक तत्व को उत्पन्न कर उनका पोषण करती रहती हैं, क्या उसकी इच्छा यह नहीं रही होगी कि वह अपने प्राणाधार को अपनी आखें बिछाकर हो बिठावे ? उस महामाया की इच्छाशक्ति का वर्णन कौन कर सकता है ? उसकी इच्छा ही सृष्टि है। महामाया की कल्पनामात्र का प्रतिफल सारा विश्व जल के बबूले के समान विद्यमान है। उस एक बबूले में कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड करोड़ों मील प्रति मिनट को गति से आजके स्फुटनिकों की तरह तैर रहे हैं।

इतनी शक्तिशालिनी प्रकृतिस्वरूपा महागौरी चाहे आँखें बिछा देना और उससे भोलेनाथ विचलित हो उठें, कोई अतिशयोक्ति नहीं मानी जानी चाहिए। क्योंकि आदि शक्ति के केवल सोचने मात्र से अनहोनी से भी अनहोनी कल्पना में मूर्तरूप धारण कर सकती है।

जब भी भगवती व्याघ्र चर्म में अपनी दोनों गदोली फेर-फेर कर मणियाँ खोज रही थीं तो रोमावलियों एवं गदोली के संघर्षण के कारण विद्युत् शक्ति का भी प्रादुर्भाव हो गया था। उसने भगवती के नेत्र की भी छवि उतारने में सहायता की। संघर्षण में बड़ी विशाल शक्ति होती है। अत्यन्त नाजुक सन संगठित होकर जब कुएँ पर लगे लोहे से संघर्ष करता है तो कठोर लौह खंड भी कट जाता है। प्रत्येक विद्युत् शक्ति केन्द्र में ताम्बे के ऊपर कारवन के संघर्षण से ही हमें आप सभी को प्रकाश के साथ-साथ अनेक महानतम सेवायें प्राप्त होती हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है—

अतिशय रगड़ करे जो कोई।
अनल प्रकट चन्दन ते होई॥

भगवान् कृष्ण के काल में सुभद्रागर्भस्थ अभिमन्यु ने अपने पिता द्वारा चक्रव्यूह भेदने की कला का ज्ञान प्राप्त किया—इसे भी क्या कल्पना कहा जा सकता है ?

हमारे विचार से तो इसे कपोल कल्पना नहीं कहा जाना चाहिए। क्योंकि गर्भस्थ आत्मा का सम्वन्ध मां के हृदय तथा अन्य चेतना-स्पन्दनों से ऐसा जुटा रहता है कि जो भी कार्य मां गर्भावस्था में करती है उसका गर्भस्थ जीव पर अवश्य प्रभाव पड़ता है। गर्भस्थ आत्मा भी कहीं उस समय याने ८-९ मास गर्भावस्था में पूरा कर चुका हो तो माता की वौद्धिक शक्ति का गर्भस्थ आत्मा से बड़े निकट का सम्वन्ध जुटा रहता है। अतः अभिमन्यु का गर्भ में ही उक्त कला का ज्ञान होना संभव है। फिर परिस्थिति पर भी विचार करने से यह सही मालूम पड़ता है।

इस आख्यान के विषय में महाभारत महाग्रन्थ के युद्ध पर्व में लिखा है कि जिस वक्त सव्यसाची अर्जुन अपनी पत्नी को चक्रव्यूह-रचना, उसकी विशेषता और उसको भेदने की कला का विशद आख्यान सुना रहे थे, उस समय अभिमन्यु की माता उस आख्यान को पलंग पर आराम से लेट कर सुन रही थीं। जो कुछ उनके मस्तिष्क में पहुँच रहा था वह गर्भस्थ शिशु में मस्तिष्क को प्रभावित कर रहा था।

जिस समय के समाज का चित्रण महाभारत में वर्णित है उस वक्त उन लोगों के आचार-विचार बड़े ऊँचे व धर्मशास्त्रों को मानने वाले थे। उनकी दृष्टि में इस वात में कोई शंका नहीं थी कि संस्कारपूर्ण सन्तान, शरीर और मस्तिष्क की दृष्टि से दूसरों की अपेक्षा अधिक विकसित होंगी।

अनेक ऐसे वर्ग के लोग अब भी समाज में है जिनकी आस्था धर्मशास्त्रोक्त षोड़श संस्कारों में है। भले ही वर्तमान पद्धति से शिक्षित विदेशी लोग इस प्राचीन विचार, विश्वास को अन्धविश्वास की संज्ञा देकर उपेक्षित कर रहे हों। पर अच्छी तरह सूक्ष्मता से विचारने पर उनमें अनेक गुण मिलते हैं। हमें कुछ परिवारों में प्रचलित परम्परा को निकट से देखने का अवसर मिला है और वैज्ञानिक दृष्टि से उनकी अच्छाइयों और बुराइयों पर विचार भी किया है। अब जब उनके परिमाणों को देखते हैं तो भारतीय ऋषि मुनियों की सूझ बूझ और ज्ञान की विशालता देखकर हृदय गदगद हो उठता है।

उन अन्तर्द्रष्टा योगियों ने समाज का नियमन करने की कैसी सुन्दर व्यावहारिक विधियाँ समाज को दी हैं। एक वर्ग ऐसा अब भी है चाहे वह आचरण धर्म से डरकर ही करता हो, लकीर पीटने के माफिक; पर ये सब रीति-रिवाज पुराने हो चुके हैं, इसलिए उनकी उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिये। उदाहरण के लिये अधोलिखित परम्परा की चर्चा की जा सकती है जिसका अब का आधुनिक समाज त्याग करता जा रहा है।

कुछ परिवारों में अब भी जब स्त्री रजस्वला होती है तो उसे एकान्त में वास मिलता है। चार दिनों तक उसे घर का कोई प्राणी नहीं देख पाता। वहीं उसी डार्करूम में बैठकर अपने अन्तःकरण के प्लेट पर सिलवर नाइट्रेट का घोल चढ़ा लेती है और उसे अपने मस्तिष्क रूपी कैमरे में लोड कर लेती है। जब स्त्री रजस्वला होती है तो केवल सास या घर की कोई महिला ही उसे भोजन, जल वगैरह की व्यवस्था करती है।

तीन रात्रि के उपरान्त जब चतुर्थ दिन प्रातः अपने बाल मलकर स्नान कर गीले-वस्त्र स्नानागार से बाहर निकलती है तो उसे १ से ४ साल के भीतर के कोमल व सुन्दर बालक के हाथ से वस्त्र दिलाया जाता है और प्रथम बार वह नारी उस सुन्दर बालक के हाथ से वस्त्र लेते ही तुरन्त घूम जाती है और उसके कैमरे का शटल बन्द हो जाता है। बाद में वह जब शिशु को जन्म देती है तो उस शिशु की आकृति उस वस्त्र देनेवाले बालक से अवश्य मिलती है। इस प्रथा का रहस्य पारिवारिक रूप-परम्परा की रक्षा है। विचार व वातावरण का मधुर-उग्र प्रभाव गर्भस्थ बालक पर कुछ न कुछ अवश्य पड़ता है।

वैसे तो यह दुनियाँ बहुत बड़ी है, परन्तु प्रमाण वही माना जाता है जो निकट से प्रत्यक्ष देखा गया हो।

यहाँ पर एक छोटा सा प्रत्यक्ष देखा अनुभव उद्धृत कर रहा हूँ।

मेरी धर्म पत्नी ने अपनी तीसरी गर्भावस्था के सातवें महीने से शिव पुराण दोबारा पढ़ना प्रारम्भ किया। उनकी नित्य की यह दिनचर्या थी कि जब मैं पूजा-घर में अपना पूजन कृत्य करता था उस समय वे हमारी पूजन-सामग्री की सभी व्यवस्था-मृतिकादि का गठन, पुष्पमाला, बेलपत्र वगैरह, धोकर व साफकर मृतिका का छोटा और बड़ा ही कमनीय चतुर्भुज गजानन बनाकर पूजा की चौकी पर रखकर, भोजन-प्रबन्ध में जुट जाया करती थीं। जब मैं पूजनोपरान्त भोजन करके ९½ बजे अपने कारखाने चला जाता था, तो वे १० बजे से शिव पुराण का वाचन करती थीं। कभी १ घण्टा कभी २ घंटा, जैसा अवकाश मिला।

उन्होंने कभी स्कूल में पढ़ा नहीं है। कुछ परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं। केवल दुखिया विधवा माँ के सहारे पढ़ना सम्भव न हो सका। उन्होंने रामायण के अक्षरों को मिला-मिला कर ही पढ़ना सीखा है।

पूजागृह में १८" चौकोर संगमरमर जो उसी के बराबर ६" ऊँची पीतल की चौकी के मध्य पार्थिव लिंग, उसके पीछे कुलदेव का सिंहासन, उस सिंहासन से सटकर एक ध्यानावस्थित पद्मासन में बैठे अर्धोन्मीलित शंकर भगवान का चित्र था, उसी के सम्मुख बैठकर पुराण पढ़ा करती थीं। यह क्रम चलते उनके गर्भ के पूरे १० माह व्यतीत हो चले और वे भार से अस्त-व्यस्त हो उठीं। उनकी यह थकान और क्लान्ति देख मैं विनोदवश कह बैठा कि क्या तुमने घोड़ी से बाजी लगाई है। उनकी थकित विवशता लजा उठी। तुरन्त मैंने अनुभव किया कि यह तो प्रकृति की लीला है। मैं स्वतः कुछ झेंपसा गया। सहसा मेरे मुख से निकल गया कि क्या तुमने शिव-पुराण पूर्ण कर लिया है ?

उनका उत्तर था—अभी नहीं और अंगूठे व तर्जनी का अन्तर दीखाते हुए करीब सौ पन्ने इंगित किये।

मैंने उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहा बस यही कारण है कि भगवान् तुम पर दयालु हैं कि तुम्हारा व्रतभंग नहीं कराना चाहते।

मैंने क्या कहा ! मेरे मुँह से किसी अज्ञात शक्ति ने कहा—जिस दिन वह पूरा करोगी उसी दिन तुम्हें प्रसव होगा और तुम्हारा कष्ट दूर होगा।

भगवान् की ऐसी मन्शा थी और उन्हें भी मेरी बात जँच गई। उन्होंने उसी दिन ४ बजे शाम तक अपना शिव पुराण पूर्ण कर लिया और उसी दिन रात्रि के ११ बजे उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह बालक देखा गया तो बहुत-सी बातें उस शिव चित्र से मिलती थीं। उसकी आँखों पर विशेष प्रभाव प्रतिलक्षित होता था। ७-८ माह का होने पर वह बालक पद्मासन से ही बैठता था। बालक जब बड़ा हुआ तो उसने अपनी बी० काम तक की सभी

परीक्षाएँ अच्छे अंकों से वगैर कभी अनुत्तीर्ण हुए पूर्ण की। उसकी विद्याभ्यास की भूख बी०, काम, करने के बाद भी पूर्ण न हो सकी। पर आगे पढ़ाई जारी रखना मेरे लिये सम्भव न हो सका; क्योंकि परिवार के ५-६ बच्चों को विद्याभ्यास कराते रहना उस व्यक्ति के लिये, जिस पर एक बड़े परिवार का भार हो बहुत कठिन कार्य होता है।

ऊपर के उदाहरण से मुझे प्रत्यक्ष अनुभव मिला इसीलिए मैं इस प्रकृति की सुन्दर लीला का दृश्य जो घटित हुआ उसे लिखनेका लोभ संवरण न कर सका।

यह विषय किसी व्यक्तिविशेष की प्रशंसा की गरज से नहीं दिया गया है। इसका केवल एक मन्तव्य है कि हमारे पुराणों पर जन-साधारण में आस्था उत्पन्न हो। वे उसे गलत न समझें। हमारे प्राचीन ग्रंथों में उच्च कोटि के जो नियमन व नियंत्रण के एक-एक वाक्य भरे पड़े हैं, उनका एक-एक शब्द मूल्यवान है वशर्ते हम उस प्रकृति के करिश्मे को सूक्ष्मता से देखें।

इसके उपरान्त जब भगवती ने भगवान् भोले के इस भयातुर उपक्रम को देखा तो अपने भ्रूधनुष पर आग्रह व हीनता का तीर चढ़ा कर उनके नेत्रयुग्म को अनुसंधान कर छोड़ दिया।

भगवान भोले इस तीर को न सह सके। वे घबरा कर जो पीछे एक पग हटे कि धम से उसी व्याघ्रचर्म पर फैले हजारों बिछे नेत्रों पर गिर पड़े। भोलेनाथ का अनोखा गिरना देखकर भगवती ने अपने दोनों हाथ नीचे-ऊपर अपने हृदय पर रख कर चिहुँकते हुए समवेदना में गाफिल होकर अपने नेत्र कपाट वन्द कर लिये।

अब तो भोलेनाथ वास्तव में उन युगल नेत्रों में कैद थे। युगल का अर्थ यहाँ भगवती के वास्तविक और व्याघ्रचर्म के भ्रांतियुत नेत्रों से हैं। जब भोलेनाथ ने गिरते समय वन्द किये अपने नेत्रों को खोला तो सामने उन्हें भगवती के नेत्र रूपी कारागार के कपाट वन्द मिले।

आमोदप्रियता के कारण अपनी झेंप मिटाने के लिये भगवान् ने घबराहट व आतुरता का उपक्रम करते हुए भगवती को पकड़ लिया। फलतः भगवती के दोनों स्कन्ध-स्पर्श से जो शक्ति प्राप्त हुई तो उनकी चेतना जागृत हुई। चेतना आतेही भगवान् भोले ने शक्ति को करपाश में आवद्ध कर लिया।

उस स्पर्श को प्राप्त कर भगवती ने अपने दोनों कपाट रूपी नेत्रों को और भी कस कर भींच लिया कि कहीं ये निकल न भागें, जैसे किसी प्रबल शत्रु द्वारा

तोड़े जा रहे द्वार को दवाये रहने के साथ घर के सामान लादकर प्रवेश अवरुद्ध करने का प्रयत्न कर रहा हो ।

भगवती उस वक्त इतनी पुलकायमान हो उठी थीं उनके उरोज ही नहीं, सारी रोमावलियाँ पुलकायमान हो थिरक उठीं और उनके चलायमान होने के कारण श्वसन-प्रक्रिया से निकलती वायु से, घवराहट में निकला भोलेनाथ का पसीना सूख रहा था मानों भगवती का रोम-रोम भगवान् को पंखा झल रहा हो । इसलिये कि भगवान् का सुख अन्तर्हित न हो, उनसे अचल लिपटे खड़ी थी । केवल श्वसन-क्रिया ही गति की सूचना दे रही थी ।

इस आकस्मिक घटित घटना के कारण जो असीम आनन्द की अनुभूति उन्हें मिली, उनका वह मुख मंडल जो अवतक व्याघ्र चर्म पर विछे नेत्रों को देखते ही कुछ भयमिश्रित हो कुम्हला उठा था, अव प्रातः उदीयमान सूर्य की किरणें पाकर कमल के समान खिल उठा—और इसी समय भोलेनाथ ने भगवती के कान में कहा, भगवती, नेत्र खोलो, मैं तुम्हारे प्रेम व श्रद्धा भरे आग्रह को टालूँगा नहीं ।

उपरोक्त शब्द भगवती को अत्यन्त कर्ण प्रिय लगे और उससे आश्वस्त हो भगवती ने मुद्रित नेत्र खोल दिये, साथ ही आदर के साथ मृग चर्म पर वैठा दिया ।

भगवतीकी प्रसन्नता की यह चरम सीमा थी । उनके हर अंग के रोम रोम से श्रद्धा टपक रही थी ।

भगवती ने भगवान् का षोड़शोपचार पूजन-अर्चन किया । ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से सस्वर वेद-मंत्रोच्चार द्वारा भगवान् भोले का विधिवत् पूजन कराया और सभी देव-ऋषियों ने अपनी-अपनी परम्परागत विधि-विधान द्वारा शिव और शक्ति की आराधना अपनी-अपनी प्राप्त शक्ति ज्ञान विद्या नृत्यादि द्वारा अपनी अपनी भाषा और वोली में वड़ी ही विमल सामूहिक स्तुति की ।

ऐसा सुन्दर मनोहारी युगल शिव-शक्ति का स्वागत देखकर सारा विश्व कृतार्थ हो उठा । प्रकृतिस्वरूपा महागौरी की प्रसन्नता के कारण सारा विश्व लह-लहा उठा जिससे सारे जीव चराचर का कल्याण हुआ ।

यही श्री भोलेनाथ को भगवती की सस्नेह भिक्षा थी जिससे चराचररूपा सृष्टि का कल्याण हुआ ।

× × ×

हिमाचलसुतानाथ संस्तुते परमेश्वरि ।

लिखते वक्त श्री मार्कण्डेय मुनि ने उपर्युक्त भाव की परिकल्पना क्या की होगी यह मैं नहीं जानता; क्योंकि न तो उतनी विद्वता मुझ में है न ज्ञान ही है कि अनुमान लगा सकूँ ।

शिव-शक्ति ने जो अपना स्वरूप अन्त:स्थल में उत्पन्न किया उसकी मैं कल्पना मात्र कर पाया हूँ । चाहे वह सही हो या गलत यह तो वही जाने जो घट-घट में व्याप्त है और उसी की प्रेरणा से जो मन में भाव उठे, उन्हें लिखा ।

श्री मार्कण्डेय मुनि की सप्तशती के अमृत पान की प्यास कभी शान्त की जा सकती है ? जब तक पृथ्वी पर उनकी रचना की एक भी पंक्ति विद्यमान रहेगी तब तक वे मुनि अमर हैं । प्रार्थना है पाठकों से "हमारी मूर्खता को हमारी भूलों से छोटा न समझे ।"

मार्कण्डेयमुनिसिंहस्य कवितावनचारिण:
शृण्वन्हि कथानादं को न यति परां गतिम् ।

इन्द्राणीपति सद्भावपूजिते परमेश्वरि

रु० दे० ज०

उपर्युक्त पंक्ति का सीधा सादा अर्थ तो यही है "इन्द्राणी के पति (इन्द्र) के द्वारा सद्भावपूर्वक पूजित है परमेश्वरि" किन्तु इसके तल में प्रवेश करने पर यह ज्ञान होता है कि किसी समय शक्ति-प्राप्त्यर्थ इन्द्र को भी भगवती की पूजा करनी पड़ी थी ।

इन्द्र देवताओं के राजा हैं। उनकी शक्ति असीम है । ऐरावत उनका वाहन, स्वर्ग उनका दुर्ग, वृहस्पति उनके मन्त्रदाता और देवगण उनकी सेना; किन्तु सारा सम्भार होते हुए भी वे तब तक अपूर्ण थे जब तक उन्होंने भगवती की शरण नहीं ली । इन्द्र के द्वारा पूजित न कहकर इन्द्राणीपति के द्वारा पूजित कह कर मुनि ने एक और संकेत किया है । वह संकेत अत्यंत मार्मिक है । इन्द्रपत्नी शची यशस्विनी प्रभावयुता देवी हैं किन्तु उनके पति को शक्ति की आराधना के लिए भगवती की ही शरण लेनी पड़ी । मैं उक्त तथ्य को अपने हृदय की कल्पनाओं की कथा में, उसी देवी के प्रसाद से, बाँधने का यथामति प्रयास कर रहा हूँ ।

एक वार देवलोक में देवताओं के राजा इन्द्र की सम्पूर्ण शक्ति जर्जरित हो चुकी थी। उनका शासन पंगु बन गया था। प्रजा में शीलमर्यादा का ठिकाना न था। प्रतिक्षण देवलोक अनेक संकटों से विपन्न हो रहा था। विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया था। दैत्यों का आतंक बढ़ रहा था। देव-संस्कृति के बन्धन शिथिल पड़ रहे थे। इन सारी समस्याओं का एक साथ सामना करना देवेन्द्र के लिए सम्भव नहीं प्रतीत हो रहा था। उन्हें अपनी शक्ति क्षीण लगने लगी। उन्हें लगा यदि इसी प्रकार अवनति होती गयी तो एक दिन अस्तित्व भी संकट में पड़ जायेगा। वे चिन्ताग्रस्त हो गये। सहसा उन्हें जगज्जननी शक्तिस्वरूपा भगवती का स्मरण हो आया। लगा जैसे उनमें नवीन जीवन का संचार हो आया हो। उन्होंने सारी प्रजा के साथ शक्ति की शरण में जाने का संकल्प किया। इसके लिए उन्होंने प्रजा में घोषणा करवा दी।

जब स्वयं ही देवेश्वर इन्द्र शक्ति से भिक्षा मांगने के लिए आतुर हों प्रजा भला देवीदर्शन के लिए व्याकुल क्यों न हो? त्रस्त भी तो वही थी।

सूचना प्राप्त होते ही देवगण अपनी-अपनी देवांगनाओं को साथ लिये स्नानादि नित्यकर्म से निवृत्त हो शुभ्ररेशमी वस्त्र एवं विविधाभूषण धारण कर सुनिश्चित समय से पूर्व सुनिश्चित स्थान पर भस्म चन्दनादि लगाये पूजन-सामग्री से युक्त वेदध्वनि करते हुए एकत्रित होने लगे।

मेनका, रम्भा, उर्वशी, तिलोत्तमा आदि प्रख्यात अप्सरायें अपनी-अपनी सखियों, अपने-अपने सहयोगियों तथा अपने-अपने वाद्ययन्त्रों से युक्त अत्यन्ताकर्षक रूप से सज-धजकर नाना प्रकार के बहुमूल्य आभूषण धारण कर उपस्थित होने लगीं।

ऋषि-मुनि आदि महान् तपस्वी, अपनी-अपनी सहधर्मिणियों को साथ लिये अपने ऋषिकुमारों सहित आ उपस्थित हुए।

उन सभी तपोनिष्ठ तेजस्वियों के मुखमंडल पर तपस्या व विद्वत्ता की इतनी अपूर्व छवि थी कि देखते ही बनती थी। उनकी धवल जटा व नाभी तक लटक रही दाढ़ी मानो चाँदनी छिटक रही हो।

जो युवा ब्रह्मचारी थे, उनका कहना ही क्या? उनके अंग-अंग में परिपुष्टता, सत्यता और स्फूर्ति परिलक्षित हो रही थी।

श्री देवराज इन्द्र का शक्ति-अर्चनार्थ यह उपक्रम देख प्रकृति ने भी अपना उदार सहयोग प्रदान किया; क्योंकि वह भी अत्याचार से त्रस्त थी। प्रकृति ने अत्यन्त रमणीक सुहावनी वसन्त ऋतु प्रस्तुत कर दी।

सुन्दर पवन मलयाचल की तमाम वनौषधियों की सुवास और सुप्तभाव लिये

लहलहाकर स्वच्छन्द होने लगा और यहाँ उपस्थित तथा मेनकादि वारांगनाओं के कोमल अंगों को स्पर्शकर स्वयं पुलकित हो रहा था।

इन्द्र का वाहन—श्वेत वर्ण का अत्यन्त हृष्टपुष्ट भारी भरकम काया है उसकी, द्वादश शुण्ड हैं उसके और हर शुण्ड के दोनों ओर अत्यन्त नोकदार उसके बलिष्ठ दाँत एक ही आकार-प्रकार के, समान मोटाई व लम्बाई के बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं।

उन दाँतों पर रत्नजड़ित स्वर्ण मेखलायें इस प्रकार शोभायमान हो रही हैं जैसे पंक्तिबद्ध सेना का समूह अपने भुजदण्ड पर भुजबन्ध बाँधे खड़ा हो।

उसकी गरदन में मोती की बड़ी-बड़ी मालाएँ और उनके बीच सोने का घण्टा लटक रहा है। उसके दोनों विशाल कानों में मोती के बने फूल गुँथे हुए हैं। बारहों मस्तकों पर अत्यन्त कठोर प्रहार निवारक कवच, अनेक कठोरतम धातुओं के संमिश्रण से बना हुआ, कसा हुआ है। उन कवचों के ऊर्ध्व भाग में एक-एक बड़ा हीरा जड़ा हुआ है और उन हीरों के पहल कलाकार ने इस चातुरी से तराशे हैं कि वे बारहों मणी अपने पड़ोसी हीरों के प्रकाश से ही प्रकाशमान हो रहीं हैं; उन्हें सूर्य से प्रकाश-प्राप्ति की आवश्यकता नहीं रह गई है। ऐसी सूरत में वे मणियाँ रात्रि के गहन अन्धकार की छाती विदीर्ण कर पथ पर प्रकाश विकीर्ण कर रही हैं।

जब कभी ऐरावत अपनी मस्ती में झूम उठता था तो ऐसा लगता था कि विशाल पर्वत पर बार-बार दामिनी का प्रहार हो रहा है। वे युद्धस्थल में सामने आनेवाले शत्रुओं की आँखें चकाचौंध कर उन्हें पथभ्रष्ट कर देने में समर्थ थीं।

अगर कहीं उस मातंग की मस्ती युद्धस्थल में और बढ़ गई और उसने दोनों ओर लटक रहे नगाड़ों पर पूँछ से थाप दे दी तो विदित होता था कि आसमान गरज रहा है।

जब अपने बारहो शुंड उठा कर चिग्घाड़ मार दौड़ता था तो विदित होता था कि साक्षात् महाकाल विरोधियों को मृत्युपाश में बाँध लेने के लिये दौड़ा आ रहा है।

उस मत्त मतंगज की पीठ पर से दोनों ओर पृथ्वी से केवल एक हाथ ऊँचे तक मखमल पर जरदोजी का कलापूर्ण काम से युक्त झूल लटक रहा है। उस झूल के किनारों पर सोने के तारों से बनी एक बालिस्त चौड़ी बरफीदार जाल बनी हुई है। उन जालों के सिरे पर चाँदी के बने चमेली के फूल गुथे हुए हैं।

गजराज की पीठ पर अत्यन्त मनोहारी मणिमुक्ताओं से खचाखच भरा एक मयूरासन कसा है। जिसके दोनों तरफ एक-एक मोर अपना सुन्दर रंग-

विरंगा लम्बा पर समेटे अपनी अत्यन्त लुभावनी चमकदार गर्दन से इन्द्रधनुष का सतरंगा दुपट्टा लपेटे अपनी चोंच में एक-एक विशाल सर्प की गरदन थामें उसे झकझोर कर पृथ्वी पर पटक, एक पंजे से उसके शरीर को विदीर्ण करने की मुद्रा में अवस्थित यह संकेत करता प्रतीत होता है कि देव-द्रोहियों का यही अन्त है।

तीसरा मोर इन्द्र के पीछे अपने सम्पूर्ण पंख को गोल परिधि में पूरा फैलाये नृत्य की मुद्रा में अवस्थित अपनी सतरंगी गरदन ताने अपनी चोंच में एक गुलाव की माला लिये खड़ा है पीठिका वनाये।

उस ऐरावत के पैरों में मधुर-मधुर शब्द करनेवाले घुँघरू तथा छोटी-छोटी घण्टियाँ वँधी हैं।

एक शुंड में वह १०८ दीपमालिका से युक्त दीपदान लिये है। दूसरे में धूपपात्र, तीसरे में कपूर आरती, चौथे में वड़ा विशाल घण्टा, पाँचवें और छठे को उर्ध्वोन्मुख किये नील विकसित कमलों की माला शक्ति के अर्पणार्थ लिये हुए हैं। सातवें और आठवें की संयुक्त पकड़ में एक वड़ा सा थाल है जिसमें तमाम पूजन-सामग्री यथास्थान सजाकर रखी हुई है। नवम शुंड में जल से भरा कलश है। दश में चाँदी के कटोरे में गुलाव जल केशर मिश्रित कस्तूरी चन्दन है। एकादश व द्वादश शुन्ड में एक सोने का वड़ा थाल हैं, जिसमें भगवतो के नैवेद्य हैं। पोखराज नीलमणि आदि दुर्लभ मणियों को काट व छांटकर वनाये गये कटोरे, कटोरी, गिलास आदि में सजा व सँवार कर अनेक प्रकार के व्यंजन पक्वान्नादि रखे हुए हैं। उसी थाल के मध्य में एक लहरदार मोती की वनी पारदर्शी थाल में स्वर्णपत्रावेष्टित ताम्बूल हैं। उस थाली के मध्य एक नीलमणि का वना अर्ध विकसित कमल पुष्प वना है नाल युक्त। जैसे वह उस तडाग का केवल एक मात्र राजपुष्प हो। उस पुष्प में अतिदुर्लभ इत्र भरा है जो अपनी सुरभि से वात.वरण को मादक वना रहा है।

इस प्रकार नखशिख से पूजन के लिए तत्पर वह मातंग इन्द्रभवन के द्वार पर खड़ा झूम रहा है। परन्तु उसके झूमने में भी एक प्रकार की शिथिलता है, उसके इतने सजाव व श्रृंगार के होते हुए भी, प्रतिलक्षित हो रहा है कि उसके स्वामी की ही शक्ति जव क्षीण हो चुकी है तो सेवक में शक्ति कहाँ दिखाई पड़ सकती है? हाँ, उस मातंग में आशा की कुछ किरणें अवश्य दिखाई पड़ रही हैं जिनके सहारे वह खड़ा है नहीं तो, कव का गिर गया होता।

इधर देवताओं ने विचार किया कि इतने भिन्न-भिन्न प्रकृति के जीव शक्ति-प्राप्त्यर्थ सामूहिक रूप से जव यात्रा पर चलने को उद्यत हों तो मार्ग में किसी

प्रकार की दुर्घटना न घटित हो। इसका प्रबंध करने का भार किस पर सौंपा जावे ? विचार-विमर्श के उपरान्त सभी देव-ऋषियों ने एकमत हो इस उत्तर-दायित्व का भार ससम्मान सेनानी स्कन्द को सौंपकर उन्हें सम्मानित किया। वे आदेश शिरोधार्य कर अपने उद्योग में रत हो गये।

उन्होंने अपने युग के हेलिकाप्टर विमानरूपी मयूरयान का स्मरण किया कि वह उपस्थित हो गया। वे तुरत उसपर सवार हो सभी वर्गों के जीव को, जो इन्द्र-भवन के बाहर वाले विशाल मैदान में एकत्र थे, सावधान किया—और सबको यह आज्ञा दी की उपस्थित जीव चराचर तथा प्राणियो; क्रमबद्ध दिये जा रहे आदेशों का पालन वे तुरत करें। यत् किंचित् शिथिलता भी कर्तव्यहीनता मानी जायेगी और उस अपराध का दंड असहनीय होगा। इसलिये मुझे आशा है कि जो लोग वृद्धावस्था के कारण आदेश-पालन में अशक्त हों, उन्हें युवा प्राणी कर्त्तव्य-पालन में सहायता दें ताकि अशक्त होते हुए भी आदेश की उपेक्षा न कर सकें। यह हमारा प्रथम आदेश है। उन्होंने कम ऊँचाई से अपने मयूरयान पर से निरीक्षण करते समय ये आदेश उद्घोषित किये।

दूसरा आदेश—मैं जिन जिन वर्गों के प्राणियों का केवल नामों का उद्घोषण मात्र करूँगा, वे कहीं भी हो, अपनी ऊँचाई, वय और श्रेणी की नौ-नौ आकृतियाँ छाँटकर साथ लेते हुए अगल-बगल दो दो हाथ का अन्तर देते हुए क्रमबद्ध अपने को गठित कर लें। और यह ध्यान रखा जावे कि द्वार की मध्य रेखा से बाएँ ½ कोश हटकर वे अपनी सीधी रेखा बनावें जो इन्द्र-भवन के आखिरी दक्षिणकोण पर मिलेगी और वह रेखा इन्द्र-भवन से इक्कीस हाथ पहले ही पश्चिम से आकर दाहिने मुड़ती रहेगी और फाटक की मध्य रेखा पर गोलाई में उत्तर कर फाटक के बाहर से ही पश्चिम त्रिमुखी होकर ९-९ की कतार में पश्चिम से आकर फिर पश्चिम को गोलाई में मुड़ जाने वाली नदी के समान लहराती हुई बढ़ती रहेगी।

यह हमारा तीसरा आदेश है कि पृथ्वी के प्राणिमात्र को इस आदेश का अपनी बची-खुची तमाम शक्ति के कण-कण का उपयोग कर हर तरह से पालन करना होगा; क्योंकि तमाम लोग बिखरे हुए हैं। उन्हें व्यवस्थित हो जाना है। इसलिये सम्बोधित वर्ग के इतर प्राणियों का यह कर्तव्य होगा कि किसी प्रकार की अव्यवस्था फैलाये बगैर, उस वर्ग को मार्ग स्वतः उद्घोष के कान तक पहुँचते ही आवश्यकतानुसार प्रशस्त कर दें ताकि उन्हें एकत्रित होकर क्रमबद्ध होने में असुविधा न हो। हरेक जीवधारी का कर्तव्य है कि उद्घोषित नामधारी लोगों को मानचित्र में अंकित क्रमसंख्या ४ की तरफ बढ़ने दें।

इतनी आवश्यक बातें सारे समाज को समझाकर श्री स्कन्द ने सर्वप्रथम अपने लघुभ्राता श्री गजानन के नाम का उद्घोष किया। श्री गजानन जी उद्घोष सुनते ही संख्या ४ के फाटक पर पहुँच कर मध्य में खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगे।

अब स्कन्द जीने ऋषि आचार्यों का नाम सम्मान सहित पुकारा।

वे ऋषि-मुनी, आचार्यगण स्कन्द के आदेशानुसार ९-९ की संख्या में अपने चारों ओर एक एक हाथ का अन्तर रख क्रमबद्ध हो श्री गजानन के पीछे आ डटे। इन ऋषियों के नेतृत्व का भार श्री गजानन ने अपने हाथ में लिया। जैसे जैसे पंक्ति लम्बी होने लगी श्री गजानन भी मुनियों का समुदाय लिये क्र० सं० ५ की तरफ बढ़ते हुए क्र० सं० ६ के प्रशस्त मुख्य मार्ग पर पहुँच रहे हैं।

यह सब व्यवस्थाकर श्री स्कन्द जी अपने मयूर यानको ऐरावत की ऊँचाई की समता पर लाते हुए इन्द्र के सम्मुख चलने का आदेश दिया। वह यान पलक मारते ही इन्द्र के बगल में पहुँचा। प्रस्थान के लिये उद्यत देवराज इन्द्र के पास पहुँचकर प्रस्थान की अनुमति माँगी। आज्ञा प्राप्त होते ही हरा प्रकाश फैलाने-वाला एक बाण छोड़ा। ठीक उसी समय इन्द्र के वाहन ऐरावत ने भी अपने बारहों शुंड ऊपर उठाकर चिग्घाड़ मारा। श्री गजानन के नेतृत्व में ब्रह्मर्षियों का समुदाय जिसमें चारों वेदों के प्रकांड मर्मज्ञ आचार्यलोग थे, चल पड़ा। वयोवृद्ध आचार्यों की वह पंक्ति ऐसी भव्य थी जो दर्शन मात्र से मन को शुद्ध किये दे रही थी।

वे सब के सब अत्यंत निष्ठावान् हो सस्वर वेदोक्त प्रार्थना उस आदि-शक्ति की करते चल रहे थे। उनका दायें हाथ से स्वरों का संकेत मुख और वाणी से ऐसा समन्वय कर रहा था कि सारा भूमंडल उन तपस्वियों के मुख से निकले वेदोच्चारों से गूँज उठा।

अत्यंत तपस्या और गूढ़ अध्ययन के कारण उनका शरीर वृद्धावस्था में भी अत्यन्त कान्तिमान है। हरेक के भाल पर भस्म की त्रिरेखाें खिची हैं उस पर हिम सदृश जटा और वैसी ही शुभ्र नाभी से नीचे तक लटकी उनकी दाढ़ी गंगावतरण का भास करा रही है। "विद्या ददाति विनयं" के अनुसार ज्ञान के भार से अधखुली पलकें उनकी सहन-शक्ति, ज्ञान-पिपासा, परोपकार की भावना ऐसे अनेक गुणों का दिग्दर्शन मूक होते हुए भी बखान कर रही थीं। उनके पीतवर्ण का रेशमी परिधान उस पर लाल उत्तरीय (दुपट्टा) और उसके बीच दाढ़ी और वह भी लाखों के सुगठित अनुशासित समूह में। उनका सिर

और दाहिना हाथ स्वर-प्रदर्शनार्थ एक साथ क्रम से चल रहा था और पग भी उसका सहयोग दे रहे थे। ऊपर से देखने में ऐसा मालूम देता था कि पृथ्वी पर इन्द्रधनुषी साड़ी लिपटी हो।

श्री स्कन्द ने कार्यक्रम के अनुसार अरुन्धती को आदेश दिया कि वे सारी ऋषि-पत्नियों का गठन इसी प्रकार ९-९ के क्रम से करके उनका नेतृत्व सम्भाल लें और वे ४ श्रेणियों में वर्ण के अनुसार विभक्त होकर अपने वर्णों के ऋषियों के पीछे थोड़े अन्तर पर अवस्थित होकर ऋषियों के मुख से निकले मंत्रों, श्लोकों का सरल अर्थ एक स्वर होकर प्रक्षेपित करें। श्री स्कन्द ने यह भी कहा कि ऋग, यजु, अथर्व तथा अन्त में भगवान् के भी मन को आनन्द से ओतप्रोत कर देने वाले सामवेदियों की कतारें होंगी। इस प्रकार तमाम ऋषियों और उनकी धर्मपत्नियों के जुलूस में अवतरित हो जाने के उपरान्त श्री स्कन्द ने आदेश दिया कि जितने भी स्नातक ऋषिकुमार यहाँ हों, वे उसी प्रकार सन्नद्ध होकर चल रहे तमाम प्राणियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखते हुए जुलूस का नियंत्रण करते हुये चलें।

इस प्रकार चारों वेदों के आचार्यों व स्नातकों की पंक्ति गठित कर श्री स्कन्द ने और आदेश प्रसारित किये।

अब इन्होंने देवलोक से आयी अप्सराओं को सम्बोधित कर उनमें से उर्वशी, रम्भा, मेनका और तिलोत्तमा को अपने वर्ग को ४ भागों में विभक्त कर गठित होने का आदेश दिया। अप्सराओं की युवती कन्याओं को अन्य नारियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने और उन्हें आवश्यकता होने पर जलपान आदि देने का भी भार सौंपा।

अब बड़ी विचित्र भाषा व विशेष प्रकार के सांकेतिक शब्दों का प्रसारण श्रीस्कन्दजी करने लगे जो मनुष्यों की कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था; क्योंकि वे आदेश पृथ्वी के समस्त पशु, पक्षी, कीट, पतंगादि को पंक्तिबद्ध हो जाने के लिये थे। यह तब समझ में आया जब वनराज केशरी तमाम जंगली पशुओं का नेतृत्व सम्भालने के लिये अग्रसर हुए। उनके प्रांगण में आते ही समस्त चतुष्पद ९-९ की ही संख्या में क्रम बद्ध होने लगे, सारी हिंसक प्रवृत्ति त्यागकर।

इस प्रकार सारे समूह का संगठन कर प्रस्थानसूचक शंखध्वनि प्रसारित करने के पूर्व श्रीस्कन्दजी ने अपने मयूरयान का मुख श्रीदेवराज इन्द्र, जो गजराज ऐरावत पर बैठे थे, की तरफ उसी ऊँचाई पर फेरा। पास पहुँच कर प्रस्थान की आज्ञा प्राप्त की तथा शंखध्वनि द्वारा प्रस्थान की सूचना दी। इसी वक्त उनके वाहन मयूर ने वंशी स्वर में तथा देवराज इन्द्र के वाहन ऐरावत ने अपने

बारहों शुंड ऊपर उठाकर मेघ-ध्वनि में चिग्घाड़ मारी और उसका अनुकरण समस्त उपस्थित हाथियों ने किया। इसी प्रकार सिंह ने भी दहाड़ मारी।

इस प्रकार चलते-चलते श्रीस्कन्द ने एक आदेश और भी जारी कर दिया कि—

जो वयोवृद्ध आचार्य और स्नातक गण वेदोच्चार प्रार्थना तथा जो देवांगनायें उनके सरल अर्थ का प्रसारण करती चलेंगी उन सभी लोगों का और जो अप्सरायें नृत्य-गान द्वारा अर्चना करती चल रही होंगी उन सभी लोगों के लिये शीतल जल व सुस्वादु फल वितरण का कार्य भी ऋषि कन्यायें संभाल लें।

जिस समय श्री गजानन ऋषिसमूहों का नेतृत्व करते आगे-आगे चल रहे थे उस समय यही विदित हो रहा था कि आगे-आगे राजा भगीरथ चले आ रहे हैं और उनके पीछे शंकर की जटा से छटक गंगा मृत्युलोक को पवित्र करती हुई हिमांचल से उतरी चली आ रही हैं; क्योंकि पीताम्बर के ऊपर और लाल उत्तरीय के मध्य उन ऋषियों की धवल हिम के समान दाढ़ी यही भास करा रही थी।

तमाम ऋषि-समूह का हाथ वरावर उच्चरित वेदों के स्वर से ऐसा चल रहा था जैसे किसी वड़े विशाल हाथ से चलने वाले जलयान के पतवार चल रहे हों। वह वेदध्वनि सुनने वालों के तमाम पाप व ताप को हरती जा रही थी। श्री गजानन के नेतृत्व में ऋग् यजु अथर्व वैदिकों की कतारें थीं और उसी के वाद भगवान् के भी मन को मोह लेनेवाले सामवैदिक आचार्यों के स्नातकों की पंक्ति थी—अध्यात्म दर्शकों के ताप को हरण कर मुक्ति देनेवाली वेदध्वनि सारे भूमण्डल और आकाश के वाक्मंडल की शुद्धि करते हुए शक्ति के चरणारविन्द की तरफ अग्रसर होती जा रही थी।

जो ऋषि मुनि अपनी वृद्धावस्था के कारण शरीर सन्तुलनार्थ दाये हाथ में कुवड़ी (छड़ी) लिये रहने के कारण वेदों का स्वर संकेत नहीं दे पा रहे थे, उनके तो मस्तक ही यहीं से भगवती के चरणारविन्द पर गिरे जा रहे थे; क्योंकि वे अपनी गरदन से ही स्वर प्रकट करते जा रहे थे।

इसके वाद ही अरुन्धती के नेतृत्व में ऋषि-पत्नियों का जुलूस था जो कि सारगर्भ वेदों का अर्थ अनेक सरल भाषाओं में साधारण जनता के वोधार्थ प्रसारित कर रहीं थीं।

इसके वाद पर्याप्त संख्या में ऋषि व देवकन्यायें परिचर्या में वड़ी ही तल्लीनता से लगी थीं। वे सब की सब वड़े मनोयोग से तृषित को गंगोदक,

क्षुधित को फलाहार, थकित और अशक्त को अपने कन्धे का सहारा देना अपना कर्तव्य ही मान बैठी थीं।

इसके बाद नाग व गन्धर्व-ललनाओं का जुलूस था जो अपने अपूर्व नृत्य, गान तथा अपनी अपूर्व भाव-भंगिमा द्वारा अपने रोम रोम के उद्‌गारों को इस जगज्जननी के गन्तव्य पथ पर बिछाये जा रहीं थी।

इसके उपरान्त अब देवलोक की तमाम प्रख्यात अप्सराओं का समूह था। उनका श्रृंगार, सजाव तथा मूल्यवान वस्त्राभूषण, केशविन्यास, तथा शारीरिक सुन्दरता अत्यन्त मनोरम थी जिसे देखते ही बनता था। वे सबकी सब अपनी अपनी कला में परिपूर्ण होने के कारण दामिनी के समान दमक रही थीं।

जिस प्रकार काली से काली घटा अपने में चमकती हुई दामिनी को नहीं छिपा पाती उसी प्रकार उनके मूल्यवान वस्त्र उनके सर्वांग परिपूर्ण यौवन को अपने में छिपाये रहने में सर्वथा असमर्थ सिद्ध हो रहे थे—उन वस्त्रों के भीतर से उनकी कदली-स्तम्भ सदृश जंघा, केहरी के समान क्षीण कटितट, अत्यन्त स्थूल नितम्ब, छलकते हुए घड़े के समान स्तनभार, प्रत्यक्ष परिलक्षित हो रहे थे। उनके कमर को और भी कसकर पतली बना देनेवाली करधनी (तगडी) पर जड़े हुए बड़े बड़े रत्न भी उनके सुन्दर शारीरिक कान्ति से फीके पड़े जा रहे थे। उसमें लटक रही मोतियों की लड़ियाँ उनकी जांघों पर लहराकर उनमें पुलक उत्पन्न करने के अलावा अपना सारा अस्तित्व खोये हुये केवल इधर उधर लुढ़क जा रही थीं। उन्हें कहीं मुख छिपाने का स्थान नहीं मिल रहा था।

उन अप्सराओं की बाँहों पर जड़ाऊ भुजबन्ध शोभित हो रहे थे। उनका लटकता हुआ फुन्दना भाव द्योतन के लिये हाथ उठाने में उनके स्तन के अग्रभाग पर छू जाता था तो उस समय उनमें सिहरन उत्पन्न हो जाने के कारण उनकी तनी हुई भौं अपने आप पृथ्वी पर झुक जाया करती थी। उस समय कुछ क्षण के लिये मृग शावक के सदृश उनके विशाल व चंचल नेत्र लज्जावश पलकों में छुप जाते थे।

वे अप्सराएँ जिस समय अपने सुडौल लम्बे मेहन्दी व नूपुरों से सजे चरण पृथ्वी पर इधर से उधर संचालित करती थी तो विदित होता था कि नदीं की तरंगों पर अग्निशिखा थिरक रही है। जिस समय वे अप्सरायें भावविभोर होकर ताल देकर नृत्यरत थीं—उस समय का अद्‌भुत सौन्दर्य अवर्णनीय है; क्योंकि सारा विश्व उनकी इस अलौकिक कला को देखकर चित्रवत् जड़ हो गया था। भावयुक्त होकर उन अवर्णनीय सुन्दरियों का नृत्य मुनिजन के मन को भी चंचल कर देने में समर्थ था। उनके भावप्रवण गीत समग्र सृष्टि में प्राणवायु

का संचार कर रहे थे। इस समारम्भ में सभी राग व रागिनियाँ रूपधारण कर पधारी थीं। वे देवियों के भावमयी एवं रागमयी सर्जना की अलौकिकता देखकर इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने अपनी सम्पूर्ण कला का भंडार मानो सौंप दिया और जिसके प्रताप से सरगम की मनोरम झंकृति से संसृति का कण-कण स्पन्दित होने लगा। उनके मधुर कंठों से निकले मनोहारी मधुर गान सुनकर वन के मधुरकंठी पक्षी चकित हो अपने मधुर कंठ का अभिमान खो बैठे।

इसलिये वे सब के सब मधुरकंठी पक्षी लज्जित हो मंद कलरव करते हुए इस वृक्ष से उस वृक्ष पर छुप जाने के लिए भाग चले, परन्तु जहाँ उन्हें नित्य ऐसे फल लगे वृक्षों पर बैठकर बसेरा लेने का स्थान प्राप्त हो जाता था उन्हें वहाँ से आज भागना पड़ रहा था। आज उनके स्थान पर कोई दूसरी सजी-सजाई नवेली झूम रही थी।

आज इधर से शक्ति-अर्चनार्थ देवराज इन्द्र तथा हजारों तीर्थों के समान देवर्षि लोग गुजरेंगे इसका रसास्वादन लेने के लिये राजपथ के दोनों तरफ के पुष्पित फलित वृक्षों के तने से लेकर सिरे तक सर्प के समान लिपटती हुई लतायें, प्रेयसी के रूप में आलिंगनरत हैं और विकसित एवं प्रफुल्लित हैं। परन्तु, प्रकृति की लीला भी तो अद्भुत है। उन वृक्षों को इन लताओं के बन्धन की रंच मात्र भी चिन्ता न थी, बल्कि प्रेयसी के आलिंगन में वे इतने मत्त हो रहे थे कि उनका शरीर फूला जा रहा था—यहाँ तक वे प्रफुल्लित थे कि लताएँ उनके शरीर में धँस गई थीं और वे विटप पैर से लेकर गले तक इतने कसे रहने पर भी मस्ती में झूम रहे थे, क्योंकि प्रेयसी उनके तन से लिपटी जो पड़ी थी।

उस प्रेमाबद्ध दम्पती की यह हार्दिक अभिलाषा उमड़ पड़ी कि हम दोनों गलबाँही डाले इतना झूमें कि पुष्प पृथ्वी को ढंक ले और उन पर से देवराज तथा ऋष्यादि गुजरें और उनके पदतल में पहुँच कर हम दोनों अपना जीवन सार्थक कर लें।

इसी होड़ के कारण उन शर्मिन्दे परिन्दों को यहाँ छिपने का स्थान न प्राप्त हो सका।

अब ठीक इसके पीछे, कुछ चुनी-चुनाई प्रख्यात अप्सराओं का जुलूस था जिसमें उर्वशी, रम्भा, मेनका, तिलोत्तमा आदि प्रख्यात ११ अप्सारायें थीं। वे बड़े ही भव्य साज-सज्जा व शृंगार से युक्त अनेक मणि-मुक्ताजटित स्वर्ण भूषणों से सज्जित मन मोहक अंग रागादि का विलेपवन किये अपने-अपने केश उच्च कोटि की केश-विन्यासकला से सँवारे और उसे पुष्पों से अलंकृत किये, कंठ में अलभ्य रत्नों की माला पहने अपने शरीर के वर्णों से मेल खाती आकर्षक

रंग की रेशमी साड़ियों में लिपटी उनकी सुगढ़ लम्बाई विशेष आकर्षण पैदा कर रही थी। वह शोभा उस समय अपनी चरम सीमा चूम उठती थी जब वे नृत्य की मुद्रा के बीच अपना दाहिना पैर थोड़ा आगेकर अपने बायें हाथ की अँगुलियों के अग्रभाग से उसे स्पर्श करने की मुद्रा में होती थीं। उस समय वे उस हरिणी सी लगतीं जो अपने पीछे अहेरी को देखकर भागने के लिए एक पैर उठा चुकी हो या मानो कोई श्वेत गज शावक अपना शुंड लटकाये सामने खड़ा हो।

जब उन अप्सराओं के कटि-तट पर कसकर बाँधी जड़ाऊ करधनी पर दृष्टि पड़ी तो एक सुन्दर स्वर्ण-श्रृंखला का आभास हुआ जिससे हौदा बँधा हो और कमर के अत्यन्त पतली होने व स्तनभार से फैले हुए ऊपर सीने के तरफ चौड़ाई बढ़ने के कारण उसकी परिधि दूनी हो गयी थी। इसीलिये दिखाई देता था कि अत्यन्त रमणीय रानी हाथी पर बैठी ऊपर हाथ उठाकर ईशवन्दना कर रही हो। यह ग्यारहवीं अप्सरा तिलोत्तमा थी। अपने मस्तक पर छोटी कामदार मखमली टोपी टेढ़ी लगा रखी थी और गले में बड़े-बड़े मोती की माला पहने हुई थी।

जिस समय यह स्थिर मुद्रा टूटी उस समय तिलोत्तमा ने जुड़े व एक पैर पर चढ़े दाये पैर को थोड़ा अलग किया और ऊपर उठे जुटे हाथों की उसी मुद्रा में पृथ्वी छूने कों पृथ्वी के तरफ झुकी और पृथ्वी को स्पर्श करने के बाद चपला-सी जब सीधी होने लगी तो गले में लटक रही अमूल्य बड़े-बड़े मोतियों की माला स्तन में उलझ गई जो तनते ही टूट पड़ी और उसके तमाम दाने बिखर पड़े। किन्तु उसे इसकी सुध भी न थी।

ऐसा मनोहारी नृत्य उस समय तिलोत्तमा कर रही थी कि उसे देखते ही बनता था। उसके अत्यन्त बारीक रेशमी वस्त्र उसके वक्षस्थल, कटि, नितम्ब और नागिन सी लहरानेवाली वेणी को अपने में छिपाये रखने में असफल सिद्ध हो रहे थे। और इस ग्लानि के कारण वे झीने वस्त्र भी भावावेश में अंग सञ्चालन के समय शरीर का साथ छोड़ देने को हवा में फड़फड़ा रहे थे। उस मनोहारी नृत्य का भला वर्णन कौन कर सकता है? इस युग में हम आप तो उस नृत्य की कल्पना भी कर पाने में सर्वथा असमर्थ हैं।

उसकी भव्यता का अनुभव तो केवल इस तरह ही आँका जा सकता है कि इस मर्त्यलोक के किसी भी कलाकार को प्रकृति-प्रदत्त गुण एक दो ही प्राप्त होते हैं जैसे रूप मिला तो कंठ नहीं, कंठ मिला तो शरीर प्रभावशाली न हुआ, शरीर मिला तो ज्ञान नहीं, इत्यादि। जब एक या दो निधि पाकर भी

कलाकार अब भी श्रोता या दर्शक को मंत्रमुग्ध कर देने में समर्थ हो जाते हैं तो भला सोचें कि जिन्हें कला का अक्षय वैभव प्राप्त है, उसकी कला कितनी मनोमुग्धकारी होगी ?

इस प्रकार विविध शृंगार से सजी व दैवसम्पत्ति से संपन्न राग व रागिनियों का आशीर्वाद प्राप्त कर वे अप्सरायें जिस समय भावपूर्ण नृत्य व गान करती हुई शक्तिपूजन-समारोह में तल्लीन थीं, उस समय सारा प्राणि-समुदाय उनकी इस अलौकिक कला पर मंत्रमुग्ध हो उठा था। इन अप्सराओं का साथ उच्च-कोटि के शहनाई वादक कलाकार भी सहयोग दे रहे थे। अब ठीक इसके बाद चोपदार विविध वेषभूषा से भूषित हाथों में भाला, बल्लम, बर्छी, चामरादि प्रसाधन लिये चल रहे थे। उसके बाद अश्वारोही अंगरक्षक एक बड़ी गोलाई में थे जिसके मध्य श्री देवराज इन्द्र अपने सजे-सजाये ऐरावत पर विराजमान थे। बड़ा ही भव्य जुलूस था वह। ऐसा भव्य और सुव्यवस्थित हर वर्ग वाला यह विशालतम जनसमुदाय महाशक्ति के दर्शन-पूजन की उत्कट अभिलाषा लिये अपनी अभिलषित लक्ष्य की प्राप्ति के पथ पर अग्रसर होता जा रहा था। कितना प्रभावोत्पादक रहा होगा वह समारोह कुछ कहा नहीं जा सकता।

हमारी काशी की जनता तथा प्रयाग की जनता ने वर्तमान युग के ऐसे-ऐसे भव्य उत्सव देखे हैं जो कि उपर्युक्त देवाधिदेव महादेव यज्ञभोक्ता सहस्राक्ष के जलूस का लाखवाँ भाग ही रहे होंगे। परन्तु आज भी उसका प्रभाव मस्तिष्क पर बना हुआ है। उनमें एक था १५ अगस्त ४७ का स्वतंत्रोत्सव और दूसरा था महात्मा गाँधी का अस्थि विसर्जन।

यदि दोनों के प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार पर ध्यान रखते हुए तुलनात्मक दृष्टि से करते हुए उसकी महत्ता की यही कल्पना अपने हृदयपट पर अंकित करें तो देखेंगे कि वह समारम्भ कल्पना से भी कहीं ऊँचा था और भावना से भी भव्य। जहाँ पहुँच कर लेखनी असमर्थ होने लगे वहाँ कल्पना द्वारा ही मार्ग प्रशस्त कर लेना हितकर होता है।

इस प्रकार शक्ति-पूजन के लिये इस महायज्ञ की पूर्णता की उमंग से ओत-प्रोत उमड़ता हुआ जनसमुद्र महामाया के मन्दिर द्वार पर जा पहुँचा।

अब देवराज इन्द्र ऐरावत से नीचे उतर कर दोनों हाथ जोड़े मस्तक नीचा किये ऐरावत को साथ लिये उसके आगे-आगे चलकर द्वार में प्रवेश कर रहे हैं।

द्वार के अन्दर प्रांगण में महामाया के सिंहासन के चारों ओर सभी वर्गवाले

प्रार्थी अपने-अपने समूह में सुव्यवस्थित प्रकार से खड़े बैठे श्रीषडानन की सुन्दर व्यवस्था की प्रशंसा मुक्त कंठ से कर रहे थे। सभी इसलिये संतुष्ट थे कि सभी को अपने ही स्थान पर बैठे-बैठे भगवती का दर्शन प्राप्त हो रहा था। वातावरण बड़ा गंभीर था। देवेन्द्र शक्ति की शरण में जा रहे थे। ऋषि-मुनिगण शक्ति की उपासना में तल्लीन प्रत्यक्ष शक्ति को मनोगत करने के लिए ध्यानमग्न थे। इस गंभीर वातावरण को हल्का करता वह गजराज अपनी पीठ पर लटक रहे नगाड़ें पर पूँछ से क्रमबद्ध थाप देता हुआ श्री इन्द्रमहाराज, जो मंच के सामने खड़े थे, के पीछे आकर स्थिर हो गया। मंच के सम्मुख खड़े देवराज के दोनों ओर से ८-८ आचार्य निकल कर दोनों ओर पंक्तिबद्ध खड़े होकर भगवती से इन्द्रकृत पूजन व वन्दन स्वीकार करने के लिये अत्यन्त विनम्र वेदोक्त प्रार्थना करने लगे। बीच में खड़े इन्द्र भावविभोर होकर पूजन स्वीकारोक्ति की प्रार्थना बड़े ही मार्मिक भाव से मूक होकर मन ही मन कर रहे थे और पश्चात्ताप स्वरूप अपने सहस्रों नेत्रों से निकले प्रेमाश्रु द्वारा भगवती के चरणारविन्द को धो रहे थे। बड़ा ही मार्मिक दृश्य था वह जब भगवती करुणार्द्र हो उठीं और मन्द मुस्कान द्वारा इन्द्र को पूजन की अनुमति प्रदान कर दी।

अब इन्द्र ने प्रफुल्लित होकर भगवती की षोड़शोपचार पूजा प्रारम्भ की। वेदवेदांगों में निष्णात आचार्यों ने वेदमंत्रों द्वारा इन्द्र का पूजन विधिवत सम्पन्न कराया।

ऐरावत ने भी अपनी सुंडों में ली हुई पूजन-सामग्री इन्द्र को दे देकर पूजन में हाथ बटाया; परन्तु दो चीजें ऐरावत ने इन्द्र भगवान् को नहीं दी। एक तो नील कमल का पुष्पहार और दूसरा पंचम में शुंड लिया हुआ घन्टा।

अब जब पूजन के अन्तिम चरण में श्री देवराज कपूर आर्ति करने उद्यत हुए तब उस मूक भक्त के धैर्य की सीमा टूट गई और ऐरावत अपने पिछले दो पैरों पर खड़ा होकर बारहों सुंड ऊपर उठाकर सुंड से घंटा व पूछ से नगाड़े पर थाप देता हुआ अपने ग्यारहों सुण्डों से शंख सदृश शब्द कर अपने चौबीसों नेत्र से अश्रुपात कर कहने लगा अपनी भाषा में।

हे माता! तेरी ही महान् शक्ति के प्रताप से श्री देवराज इन्द्र को मैं अपनी पीठ पर बिठाकर तेरे चरणारविन्द तक लाने में समर्थ हो सका हूँ। यह इसलिये और भी संभव हो सका कि वे शक्ति क्षीण होने के कारण हलके हो चुके थे। फिर भी देवलोक से यहाँ तक का लम्बा पथ तै करने के कारण मैं भी शक्ति-हीनता का अनुभव कर रहा हूँ और हे माता जिन दो सुण्डों से यह नील कमल

पुष्पहार मैं लगातार खपर उठाये चल रहा था कि इसे पृथ्वी के गर्द-गुब्बार अशुद्ध न कर दें, ये तो जैसे प्राणहीन से जड़ हो गये हैं, उन्हें मैं हिला-डुला नहीं पा रहा हूँ। इसलिये हे माता इस कठिन श्रम से लाये हुये मेरे एकमात्र पुष्पहार को तू स्वीकार कर मुझे भी शक्ति प्रदान कर। मैं बुद्धि एवं वाणी-विहीन पशु हूँ। न तो मैं इन आचार्यों के समान मंत्र जानता हूँ न स्तुति, न उनका उच्चारण ही हमें आता है। इन सभी मेरी जन्मजात त्रुटियों की उपेक्षा कर माँ तू मेरी मानसिक पूजा अवश्य स्वीकार कर मुझे भी शक्ति प्रदान कर।

अगर माँ, तूने मुझ पर ध्यान नहीं दिया तो मैं अभागा अपना कर्तव्य अब न निभा सकूंगा—माता; क्योंकि अब वापसी सफर हमारा बड़ा कठिन होगा। आते समय तो इन्द्र शक्ति से हीन होने के कारण हलके थे, पर अब आप से आशीर्वाद स्वरूप नव शक्ति प्राप्त कर गौरव भार से भारी हो चुके होंगे।

हे माता, अगर आपने मुझे शक्ति प्रदान करने में कृपणता की तो आपके वर प्राप्त भक्त सहस्राक्ष को पैदल ही कष्ट उठाना पड़ेगा और यह मेरे लिये अत्यन्त लज्जा तथा अपकीर्ति का विषय होगा और इतिहास में चमकता हुआ हर निष्ठावान सेवक को त्रास पहुँचाता रहेगा।

महावली गजराज ने इतनी अश्रुयुक्त मूक प्रार्थना कर अपने मालावाले दोनों सुंड मंच की तरफ भगवती को लक्ष्य कर आगे वढ़ा दिये।

भगवती मूक पशु की कोमल भावना को पहचान अत्यन्त स्नेह-विह्वल हो उठीं और स्वतः उठकर मंच पर आगे आकर ऐरावत से पुष्पहार लेकर उन्होने स्वयं गले में पहन लिया।

माला ग्रहण करते समय भगवती उस पशु की अन्तरात्मा की पुकार सुनकर इतनी पुलकायमान हो गई थीं कि माला लेते समय उन दोनों शुंडों में उनकी अंगुलियों का स्पर्श हो गया। स्पर्श होते ही मातंग को नव शक्ति व नव स्फुर्ति तथा शुद्ध ज्ञान प्राप्त हो गया।

जब भगवती प्रेमवशीभूत हो मातंग से प्राप्त हार अपने गले में डाल रही थीं ठीक उसी समय सुअवसर जान मातंग ने अपने कोमल ओठों से भगवती के दोनों चरण चूम लिये। वस फिर क्या था? उसी समय ओष्ठ के अगल-बगल अति कठोर दृढ़ दो दाँतों की उत्पत्ति भगवती के चरण-स्पर्श के प्रताप से हो गई जो अब तक वरावर उसकी सुरक्षा के लिए शक्तिशाली अस्त्र के रूप में विद्यमान हैं।

ऐरावत को मनोवाञ्छित शक्ति भगवती से प्राप्त हो जाने पर उसने अपने वारहों शुंड ऊपर उठाकर अपनी वोली और प्राप्त शक्ति के अनुसार अपनी

भाषा में भगवती की जयजयकार की और पिछले दो पैरों पर ही खड़ा हो अपनी मोटी गदोली जोड़कर उसने भावपूर्ण प्रणाम किया।

भगवती की कृपा उसे प्राप्त हो चुकी थी। वह भी देवराज इन्द्र के पहले अतः उसकी प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। वह प्रसन्नता से नाच ऊठा।

वह अपने घुंघरूँ बंधे दोनों पैरों से पृथ्वी पर भावपूर्ण थाप के साथ ताल देकर नाचने लगा। जिस समय वह महाबली मातंग अपने भारी भरकम काया को भावों पर थिरका थिरका कर नाच रहा था, उस समय भगवती आनन्द विभोर हो रही थीं; क्योंकि षडानन-माता को अपने लघुपुत्र गजानन का स्मरण हो रहा था और वे मातंग के प्रति वात्सल्य-प्रेम में डूबी हुई थीं।

उस मातंग की भावविह्वलता देखकर बहुत से ऋषि लोग दायाँ बाँया देखने लगे और मनही मन सशंकित हो उठे कि इस पशु की भावयुक्त प्रार्थना से उत्कृष्ट कौन सा मंत्र वेदों में है जिससे भगवती की प्रार्थना पशु के स्तर से ऊँची उठ सके। पर वेद में उन्हें ऐसा कोई मंत्र परिलक्षित नहीं हो रहा था। फलतः वे वेचारे खोये खोये से संकुचित हो इधर उधर फिरने लगे।

वे ऋषिगण मन ही मन यह सोचकर दुःखका अनुभव करने लगे कि न तो हमें सहस्रनेत्र हैं न चौविस ही कि इसके उष्ण अश्रु जल से भगवती का चरण प्रक्षालित कर सकें। यहाँ तो केवल दो नेत्र हैं, वे भी इस अकल्पित अद्‌भुत दृश्य को देखते-देखते सूखे पड़ गये हैं। अब क्या करें? बड़े दुखी हुए वे विचारे।

अन्तर्यामिनी घटघट वासिनी भगवतीको ऋषियों की ग्लानि का पता लग गया। भगवती ने अपनी कृपादृष्टि उनकी ओर फेरी। उन्होंने बड़े ही कोमल शब्दों में उन ऋषियों को संबोधित करते हुए कहा, हे देवगण और ऋषि गण ! आप लोगों के अधःपतन का कारण अभिमान है और उसी के कारण आप लोगों की दुर्दशा हुई। अगर यह मूक पशु अपनी भक्ति के बल से आप लोगों का अहंकार चूर न करता तो आप लोग खाली हाथ ही यहाँ से लौटने को बाध्य होते। किन्तु अब चिंता का कोई कारण नहीं; क्योंकि आप लोगों ने इस पशु की युक्ति देखकर पश्चात्ताप रूपी प्रायश्चित्त कर डाला। आप सभी के पश्चात्ताप से मैं सन्तुष्ट हूँ और आशीर्वाद स्वरूप आप लोगों ने उस सर्वव्यापी शिव का दर्शन कराने का प्रबंध करा रही हूँ जिनके दर्शन से आपके तमाम पाप और ताप नष्ट हो जायेंगे। उनके दर्शन के लिये आप लोग जीवन पर्यन्त लालायित रहते चले आये हैं। आज वह समय आ पहुँचा है जब आपको शिव-शक्ति

का युग्मदर्शन होगा। आप लोग शान्ति से अपने-अपने स्थान पर आसीन हो जायें।

भगवती ने सोचा जो अब तक हुआ वह सुन्दर था। जो आगे हो उसे अत्यन्त मनोहारी होना चाहिए। इसलिये अच्छा होगा कि उन्हें भी बुला लिया जाय। जब सभी देव ऋषिगण अपनी-अपनी अर्धांगिनियों के साथ पधारे हैं तो ऐसे समय में मेरे भी प्राणाधार का होना आवश्यक प्रतीत हो रहा है। वे भी तो महान् कलाकार हैं। बड़ा ही आनन्द आयेगा उन्हें जब वे अपनी ही बिखेरी कला-कृति को अनेकरूपेण एक ही जगह एकसाथ देखेंगे। यह सोचते-सोचते देवी देवाधिदेव शंकर के ध्यान में तल्लीन हो गईं।

उस काल की उनकी दिव्य-भव्य शोभा देखने योग्य थी। उनके बड़े-बड़े नेत्र मुँद चुके थे। भीतर पुतलियाँ भगवान् शिव की खोज में हिल डुल रही थीं, जिसका स्पष्ट आभास पलकों में होनेवाली हरकत से लग रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानों कमल में भ्रमर बन्द हो गया है और वह निकलने के लिए इधर-उधर प्रयास कर रहा है। उस समय माँ के आनन पर अलौकिक कान्ति थी और उससे एक प्रकार की दिव्य आभा छिटक कर सभी को आह्लाद प्रदान कर रही थी। शक्ति द्वारा शिव का आह्वान कितना दिव्य, कितना मनोरम और कितना उल्लासमय था!

अकस्मात् उपस्थित देव-ऋषिमुनिगण ने देखा कि तेजस्वरूप जटाजूट में गंगा को बाँधे, भाल पर चन्द्रमा की किरणें छिटकाये श्री देवाधिदेव भगवान शंकर अपने बूढ़े बैल पर मन्थर गति से चले आ रहे हैं। उनके हाथ में त्रिशूल है और डमरुवाला दूसरा हाथ ऊपर उठा, अभय देता हुआ, सबको शांत रहने का इंगित कर रहा है। शिव आकर शक्ति के दक्षिण भाग में स्थित सिंहासन पर आसीन हुए किन्तु फिर भी शक्ति की तन्मयता न टूटी। शिव ने शक्ति की ओर किंचिद् मुस्करा कर देखा मानो पूछ रहे हों, "शक्ति को शिव से अधिक क्या चाहिए?"

भगवती बड़ी कठिनाई में थीं। शिव ने उनके हृदय में मचनेवाले उथल-पुथल को देखा। भगवती के सामने विषम समस्या खड़ी हो गई थी। आये हुए भक्त आशीर्वाद चाह रहे हैं। दो प्रकार के भक्त हैं। एक देवगण जो केवल शक्ति चाहते हैं। दूसरे हैं मनुष्य, ऋषि-मुनिगण जिन्हें शिव की अभिलाषा है। क्या इस प्रकार शिव और शक्ति का विभाजन होगा, इसी विचार से भगवती मन ही मन खिन्न हो रही थीं। शिव भगवती के इस मोह पर मुस्करा रहे थे।

उनकी मुस्कान कह रही थी "जहाँ शक्ति है, वहाँ शिव है, जहाँ शिव है वहाँ शक्ति है।"

शक्तिको शिव की उपस्थिति का आभास होते ही उन्होंने अपने नेत्र खोल दिये। अपने आसन पर आसीन शिव को देखकर क्षणमात्र के लिए तो स्तब्ध हो गईं, उनकी पलकें खुली की खुल ही रह गईं। सम्भवतः भगवती इस कारण अपना अपराध मान रही थीं कि वे शिव का आते ही स्वागत न कर सकी थीं। वे देव, प्राणी-समुदाय के समक्ष कुछ बोलो तो नहीं; किन्तु उनके नेत्रों ने एक साथ ही क्षमा, स्वागत, अभिवादन और कृतज्ञता व्यक्त कर दी।

कामदेव को अपने तेज मात्र से भस्म कर देनेवाले मदनमथ शंकर ने भी अपने नशीले नेत्रों द्वारा स्वागताभिवादन का मूक उत्तर देते हुए वाम भाग में विराजने का मधुर इंगित किया।

उस समय प्रसन्नता में समाये हुए महामाया के पद-नूपुर भी शब्द कर रहे थे। इधर भक्तजन भगवती के नूपुरों की ध्वनि सुन लेने को लालायित नितान्त शान्त व स्तब्ध हो अपने कान, आँख व हृदय भगवती के पड़ रहे पग के आगे-आगे बिछाये जा रहे थे। उन भक्तों की सारी इंद्रियाँ इस समय इतनी शान्त हो चुकी थीं कि मालूम पड़ने लगा कि उनकी आत्मा इस नश्वर शरीर का त्याग कर शिव और शक्ति के चरणारविन्द में समा गई हों।

बड़ा ही भावयुक्त स्नेह स्वागत था वह।

शक्ति के भी सिंहासनारूढ़ हो जाने के उपरान्त एक-एक मत के आचार्यों ने अपने मतानुसार वेदोक्त मंत्रों द्वारा भगवती सहित शंकर की पूजनोपरान्त प्रार्थना की। इसी प्रकार सभी वर्णों के लोगों ने शिव व शक्ति की विमल अर्चना व प्रार्थना की जिससे सारा नभमंडल शिव शक्ति के स्तवन, पाठ तथा "जयजय-कार" से गुंजरित होने लगा।

वेदविहित पूजन के उपरान्त सन्ध्या आई और प्रदोष काल में ही प्रख्यात अप्सराओं ने अपनी-अपनी कला का बड़ा ही मार्मिक प्रदर्शन प्रारंभ किया। उर्वशी का दिव्य नृत्य अपनी पराकाष्ठा पर आ पहुँचा। दर्शकों का चित्त भाव-विभोर हो नाच उठा। सारा वायुमंडल एवं प्रकृति उस नृत्य की मोहकता से थिरक उठी। लगता था, काल भी अपनी चाल भूलकर तेज दौड़ गया हो, नहीं तो इतनी जल्दी अर्धरात्रि कहाँ से आती। अर्धरात्रि हो गई, मध्यरात्रि की अर्चना के लिए अप्सरायें आतुर हो उठीं।

सभी अप्सराएँ शिव-शक्ति के मंच के चारों ओर प्रांगण में अपने-अपने हाथ में एकादशमुखी आरती लिये उतर पड़ीं।

इस प्रकार देवकन्या तथा अप्सराएँ जब सम्मिलित नृत्य करने लगीं तो उसकी शोभा अवर्णनीय थी।

आप सोचें कि जहाँ साक्षात् नटराज शंकर और उनकी प्रिया अपर्णा अपनी विशिष्ट विभूतियों से युक्त स्वयमेव विराज रहीं हों वहाँ की शोभा का वर्णन कौन कर सकता है ? ऐसी सामर्थ्य किसमें है ?

जिस समय वे अप्सराएँ देवकन्याओं को साथ लिये अपने-अपने हाथ में एकादश दीपमालिका सजाये चक्राकार घूमघूमकर आरती नृत्य कर रहीं थीं, उस समय उन ललनाओं के मुखमंडल की दिव्य छवि अत्यंत प्रभामय हो निखर उठी थी।

उन ललनाओं के भाल पर स्वर्णनिर्मित दुर्लभ रत्नों से जड़ित जो फूल बिन्दी थी उसपर जब दीपशिखा का प्रतिबिंब पड़ता था तो वे एक के स्थान पर हजारों दिखाई पड़ती थीं।

उनके उन्नत भाल के नीचे धनुषाकार भ्रू (भौं) के ओट में मृगी के समान विशाल नेत्र हैं। सेव की रक्तिमा लिये उनके युगल कपोल और करौन्दे के समान लाल लाल उनके ओंठ हैं। मुक्ता के समान उनके दातों की पंक्ति है। उनके नीचे तिल से युक्त उनकी दाढ़ी और उसके नीचे शंख सी गर्दन जिसमें मणिमुक्ताओं से गुंथी मालायें पड़ी लहरा रही हैं। उसके नीचे वक्षस्थल पर दो अत्यन्त उभारदार कठोर पयोधर हैं। उसके नीचे केहरी को लज्जित कर देनेवाली अत्यंत पतली कमर है, जिसे और भी पतली बना देने के लिये पेटी के कसाव के समान जड़ाऊ तगड़ी (करधनी) कसी है और उसमें मोतियों की लड़ियाँ लटकती हुई दोनों जंघों पर लहरा रही हैं। वहीं से प्रशस्त गोलाई लिये पीछे की तरफ उभार लिये नितम्ब हैं। आगे कदली खम्भ की चिकनाई लिये हाथी के मस्तक का आकार कमर से ही बनाती हुई उनकी सुडौल जाँघें। घुटनों के बाद क्रमशः पतली उतरती हुई उनकी पिंडलियों और पैरों में सुमधुर शब्दकारी घुँघुरू पिरोई जड़ाऊ पायल हैं। उसके आगे सुन्दर कला पूर्ण मेहन्दी से सजा पंजा है।

मालूम पड़ता है, सृष्टिकर्त्ता ने बड़ा मन लगाकर इन ललनाओं का निर्माण किया है। जिस समय कामदेव ने भगवान् शंकर की समाधि भंग करने के निमित्त अपना शर सन्धाना था, उस समय भगवान् शंकर का तृतीय नेत्र खुल गया था और उसकी ज्वाला से कामदेव वहीं का वहीं भस्म हो गया था। शंकर के

तृतीय नेत्र में इतनी विकराल ज्वाला थी कि कामदेव के शरीर का मांस ही नहीं उसकी तमाम हड्डियाँ तक जलकर राख की केवल ढेर रह गई थी।

जब यह संवाद कामदेव की स्त्री रति ने सुना तब वह हाहाकार करती और रोती बिलखती दौड़ पड़ी। उसके साथ और भी बहुत-सी स्त्रियां थीं। सारा देवलोक घबड़ा उठा कि अब सृष्टि कैसे चलेगी? सर्वनाश प्रतिलक्षित होने लगा। सभी देवता किंकर्तव्यविमूढ़ गर्दन नत किये चित्रवत खड़े मूकदर्शक बने रहे।

रति व्याकुल विलाप करती जब वहाँ पहुँची तो वहाँ सब कुछ समाप्त हो चुका था। केवल बची थी राख की ढेर। रति ने जब अपने सोहाग का कोई चिह्न वहाँ नहीं देखा तो वह बिलख कर उपस्थित देवताओं के गले में लटक रहे दुपट्टे के दोनों छोर पकड़ लिये और विलाप करती हुई पूछने लगी—कहाँ गया मेरे भाल का सिन्दूर? तुम सबने स्वार्थ में अंधे होकर बगैर परिणाम सोचे मेरे प्राणप्रिय को इतना भयंकर कार्य सौंप दिया और स्वयं सब निश्चिन्त हो स्वर्ग में सुख का उपभोग करते रहे।

जब उन्हें तुम लोगों ने, स्वार्थवश भेजा था तो संरक्षण का उत्तरदायित्व भी तुम्हें लेना था। तब सबके सब मुँह छिपाये इधर-उधर छुपे रहे।

सभी देवता मुँह लटकाये मौन खड़े थे। कोई उत्तर नहीं था। यह देख रति असहाय हो पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

किंचित् मूर्छा कम होने पर फिर उठी और कहने लगी—

ये देवता हैं स्वार्थी, परम स्वार्थी। इन्हें यह नहीं मालूम कि जब अग्नि आदि देवता को साक्षि बनाकर वेदमंत्रों द्वारा हमारा विवाह इन्हीं स्वार्थियों ने कराया था और मैं अपने प्राणाधार की अर्धांगिनी बनी थी, हर अच्छे-बुरे काम का और पाप-पुण्य का आधा भागीदार होने का ढोंग रचाया, सप्तपदी पढ़ाई और तीन-तीन बार हम दोनों को वचनबद्ध होने की प्रतिज्ञा अग्नि को साक्षी देकर कराई। मैं पूछती हूँ तुम सबको क्या अधिकार था कि बगैर मेरी अनुमति प्राप्त किये, बगैर मुझसे पूछे हमारे पति को काल के मुख में झोंक दिया। तुमने जघन्य अपराध किया और उसके बदले में तुम्हें स्वर्ग का सुख चाहिए? तुम सबको शर्म नहीं आती। तुम्हारी निष्ठुरता तो दैत्यों एवं राक्षसों से भी बढ़कर है। मेरी पीड़ा का तुम्हें बोध भी नहीं हो रहा है। तुम स्वार्थ में अन्धे तुम्हें भला कैसे सूझेगा कि पति के बिना नारी के जीवन का क्या मूल्य है? तुम परपीड़ा नहीं जानते। तुम्हारा हृदय शिला है। इसलिए मेरा दुःख तुम्हें द्रवित नहीं कर पा रहा है। तुम सोचते हो यह रो-धोकर चुप हो जायेगी; किन्तु मैं तुम सबों को छोड़ूँगी नहीं। शाप दूँगी कि जब तक मेरे पति को तुम सब जीवित

नहीं लौटावोगे कोई भी नारी तुम देवताओं की ओर देखेगी भी नहीं। इतना ही नहीं, सारी सृष्टि को मैं ठप कर दूँगी। देखूँगी कि काम के नष्ट हो जाने पर कौन-सी माता पुत्रोत्पत्ति कर तुम्हें सेनानी देगी। तुम्हारी छल भरी सारा आशा पर मैं पानी फेर दूँगी। इसका फल क्या होगा जानते हो ? कुछ ही समय में सेना न मिलने के कारण तुम्हें एक-एक को खोज-खोज, बीन-बीन कर दैत्य अपना ग्रास बना लेंगे। उस वक्त, जब सारी देव पत्नियाँ विलाप कर सारे विश्व में कोहराम मचा देंगी, तभी मुझे संतोष होगा।

अरे स्वार्थियो, तुम अब भी नहीं बताना चाहते कि मेरे प्राणाधार का शव कहाँ है ताकि मैं उसे प्राप्त कर सती होकर तुरत उनसे जा मिलूँ। मुझसे यह वियोग अब एक क्षण भी नहीं सहा जाता।

अरे अग्नि ! तू भी मुँह छिपाये खड़ा है। उन कर्मकांडियों को भी तूने धोखा दिया है। उन्होंने ही मंत्रों से तुझे बुलाकर मेरे अर्धाङ्गिनी होने का साक्षी तुम्हें बनाया था। जल्दी बोलो नहीं तो अब मेरी प्रचंड ज्वाला तुम्हें ही भस्म कर देगी।

महासती रति का क्रोध देखकर अग्नि थर-थर कापने लगा। उसी वक्त उसके गले का उत्तरीय पकड़ पंक्ति में से उसे खींचकर रति कहने लगी—जल्दी बता, कहाँ है मेरे स्वामी का मृत शरीर। क्या उसे भी कहीं छिपा दिया तुम सबों ने, ताकि तुम सबों का यह घृणित कृत्य कोई जान न सके।

अग्नि का गला अवरुद्ध रहने के कारण कुछ न बोला और मुँह नीचे किये खड़ा रहा।

यह देख रति अग्नि का दुपट्टा छोड़कर इन्द्र की खोज करने लगी। बड़ी दूर तक दृष्टि दौड़ाने पर उसने देखा कि यमराज के भैंसे के पीछे इन्द्र अपने को छिपाये बैठे हैं। रति तुरन्त वहाँ पहुँची। इन्द्र से उसने कहा तुम ही सारी खुरापात की जड़ हो। तुम्हारा ही स्वर्ग का सिंहासन छीना जा रहा था। इसीलिये स्वार्थवश तुमने हमारा सर्वस्व नष्ट करा डाला। अरे स्वार्थी इन्द्र, किसी के पास राजलक्ष्मी हमेशा स्थिर नहीं रहती। पर तुम लोभी, चाहते हो कि मरकर भी स्वर्ग का सुख न छूटे। इसीलिये तुमने इतना बड़ा अनर्थ करा डाला। क्या तुम्हें शर्म आ रही थी भगवान् भोले को आकर जगाने में ? पर तू जानता था कि शंकर के तेज को तुम सह न सकोगे। तुमने मेरे सरल पति को बलि का बकरा बना डाला।

अब देवराज, चुप रहने से काम नहीं चलेगा। दो नेत्र वाले भले ही मेरे पति के शव को न देख पायें हों, किन्तु सहस्राक्ष बननेवाले ढोंगी, तुझसे मेरे

स्वामी का शव नहीं छिप सकता। क्या ये हजार आँखें तुम्हारी वास्तविक हैं ? मेरे पति का शव कहाँ है ? तुम बताओ। रति की ज्वाला के समक्ष इन्द्र का इन्द्रत्व भी काँप उठा। वे लज्जित भयभीत हो अपने स्थान से बाहर आये और बड़ी नम्रता से उस स्तूपाकार एकत्रित भस्म की ओर इंगित किया। देखते ही इन्द्र का पिण्ड छोड़कर रति दौड़ती हुई दोनों हाथ फैलाये अस्त व्यस्त सी उस भस्मावशेष को अपने सीने से लगाने के लिये उस पर गिर पड़ी और बहुत काल तक उसी राख पर पड़ी रही।

तब भोला बाबा शंकर ने रति के दुःख को शान्त करने के लिए अनेक प्रकार की कथा-कहानियाँ कहीं। उसे समझाया कि तुम्हारा पति कितना बड़भागी है कि उसने देवताओं के हित के लिए अपना शरीर तक छोड़ दिया। इससे तुम्हारे गौरव में भी वृद्धि हुई है।

रति भगवान् शंकर की आश्वस्त वाणी से किंचिद् सान्त्वना पाकर अपने पति के भस्मावशेष से उठी। तब तक उसके पति को भगवान् आशुतोष का अनंग होने का आशीर्वाद प्राप्त हो चुका था। इसलिए वह (कामदेव) अनंग रूप में ही रति के हृदय में बस गया।

रति के वक्षस्थल पर ही अनंग का निवास हुआ अतः सभी स्त्रियों के वक्षस्थल का आकर्षण बढ़ गया। वक्षस्थल के गौरव का यही रहस्य है। आज भी काम का विस्तार वक्षस्थल से ही प्रारंभ होता है। वही से वह संपूर्ण अंग में फैलता है।

भस्म करके भी पुनः अनंग बनाकर संसार के चर-अचर में काम-भावना को स्थिर रखना भगवान् आशुतोष औढरदानी शंकर का ही कार्य हो सकता था।

वे आज इस उत्सव में मां भगवती के दक्षिण पार्श्व में आसीन हैं। माँ उनके स्वागत-सत्कार द्वारा देवताओं का कल्याण कराना चाहती हैं।

देवताओं को स्मरण था कि भगवान् शंकर ने कामदेव को भस्म करके भी उसे अनंगरूप में जीवित भी कर दिया था। उसका स्थूल शरीरमात्र जला था। अनंगरूप में स्थित कामदेव ने देवताओं की प्रार्थना पर कैलास को ही अपनी क्रीड़ास्थली बनाया। वसन्त ऋतु का मनोरम सौंदर्य गिरि अंचल में बिखर गया। अनेक अप्सराएँ अपने सौंदर्य की मदिरा छलकाती कैलास पर मंडराने लगी। ऐसा लगता था मानों माली की बालाएँ हर वृक्ष को अपने सौंदर्यजल से सींच रही हों। देवताओं का कुटिल प्रयत्न इस बार सफल हुआ। अनंग के प्रभाव से देवताओं को अत्यन्त बलिष्ठ सेनानी के रूप में भगवान् शंकर का पुत्र प्राप्त हुआ।

सेनानी की उत्पत्ति के पूर्व अनंग कामदेव ने शंकर एवं पार्वती ने खूब रंग जमाया। भगवान् शंकर ने ही उसे भस्म किया था; फिर भी उन्हें दया आ गई थी, किन्तु उस दया का बदला कामदेव ने भगवान् शंकर से ही लिया। वह अनंग जरूर हो गया था लेकिन उसे भगवान् शंकर के आशीर्वाद ने और बलवान बना दिया था। कामदेव का शंकर और पार्वती पर क्या प्रभाव पड़ा। इसे महाकवि कालिदास के शब्दों में पढ़िये :—

समदिवस निशीथं संगिनस्तत्र शम्भाः,
शतमगमद्दतूनां साग्रमेकानिशेषः।
न तु सुरतसुखेभ्यश्छिन्नतृष्णो बभूव,
अनल इव समुद्रान्तर्गतस्तज्जलौघैः॥

(कु० सं० सर्ग ८, श्लोक ९१)

अर्थात्:—भगवान् शंकर ने पार्वती के साथ दिनरात रतिक्रीड़ा में लीन सैकड़ों वर्ष केवल एक रात्रि की भाँति बिता दिये, फिर भी वे उसी प्रकार तृप्त नहीं हुए जैसे समुद्र में स्थित वाड़वानल जल से तृप्त नहीं होता। यह था भगवान् शिव के आशीर्वाद से सहस्रगुणित शक्ति प्राप्त भस्मावशेष अनंग का प्रभाव। रति भी अनंग के कार्य में सहायिका थी। वह अति आतुर थी; क्योंकि उसके पति को अनंग बनाकर पुनः दया के वशीभूत शंकर ने उसे वर दिया था कि पार्वती की कुक्षि से उत्पन्न उसका अंगायुक्त पति होगा। वह चाहती थी कि वह क्षण शीघ्र से शीघ्र आवे ताकि उसे अंगयुक्त पति प्राप्त हो।

भगवान् शंकर औढरदानी हैं। अन्नापूर्णा दयामयी माता हैं। जब दोनों ही कृपालु हो जायँ तो भस्म में वैसी शक्ति का आ जाना साधारण सी बात है। जब वे प्रफुल्लित हो जायँ तो संसार की कौन सी वस्तु दुर्लभ रह जाती है। परम ममतामयी जननी एवं परम दयामय चित्ररूप शिव का दरबार उनकी सभी सन्तानों के लिए सदा खुला रहता है।

इस प्रकार हो रहे आनन्दोत्सव में सृष्टि आदीश्वर जगज्जननी के साथ उपस्थित थे। उन स्वर्गीय अप्सराओं तथा देव-कन्याओं ने अपने रोम-रोम के उद्‌गारों को झकझोर-झकझोर कर निकाल फेंका कि सभा का कोना-कोना प्रफुल्लित हो उठा और वहाँ विषाद का लेश मात्र भी अवशेष न रहा।

उन देववारांगनाओं के नृत्य ने जब अत्यन्त उत्कृष्ट सभा बाँधी तो विश्व-प्रकृति स्वरूपा आदिशक्ति आनन्दातिरेक से विभोर हो उठीं। उन्होंने अपने दोनों नेत्र धीरे-धीरे मूँद लिये जिससे सारे विश्व में घनघोर घटा छा गई। उस

घटा के बीच दो विश्वविभूतियाँ सूर्यमंडल के समान दैदीप्यमान् होने लगीं । नृत्य में रत ललनाओं के रत्नजड़ित आभूषण हाथ में ली हुई आरती से प्रतिबिंबित होकर यह बोध कर रहे थे कि सैकड़ों चन्द्र सूर्यमंडल की परिक्रमा कर रहे हों या रासलीला रचा रहे हों ।

विश्व-प्रकृति का बड़ा शान्त व मोहक स्वरूप था यह ।

इस प्रकार असीमित वस्त्रालंकार से परिपूर्ण राग व रागिनियों का वरद-हस्त प्राप्त किये रति तुल्य लावण्ययुक्त वे अप्सरायें—उर्वशी, रंभा, मेनका, तिलोत्तमा आदि जब नृत्य करते हुए अपने नूपुरों को झंकृत करती हुई भगवती के समीप पहुँच कर हस्तस्थ आरतीदान का भावयुक्त मूक सञ्चरण करती थीं तो उस समय लगता था जैसे दुग्धगंगा या आकाशगंगा चन्द्रमा के सामने से पंक्ति बाँधे स्वर्ण के सुमन बिखेरती जा रही हो । भगवती देवताओं की स्तुति, ऋषिमुनियों की सस्वरवन्दना वारांगनाओं का भावमय नृत्य देखकर प्रफुल्लित हो उठीं । उनके प्रफुल्लित होते ही समग्र देवसृष्टि में नवीन शक्ति का संचार हो उठा । देवगण कृत-कृत्य हो गये; क्योंकि अब उनका राजा इन्द्र शक्ति से युक्त हो गया था । इस प्रकार इन्द्र द्वारा अर्चित भगवती ने इन्द्र को शक्ति प्रदान की ।

वह देवी माँ स्वरूपा है । उसकी शरण में जो भी जाता है उसका कल्याण होता है । वह जब प्रसन्न होती है तब उसके स्नेह से सृष्टि का पालन होता है किन्तु जब रुष्ट होती है तो वह चण्डी बन जाती हैं । आइये हम सब आज उसकी शरण में चलें और एक स्वर से गावें ।

इन्द्राणीपति सद्भावपूजिते परमेश्वरि ।
रूपं देहि, जयं देहि, यशो देहि, द्विषो जहि ॥

हे देवि, रूप दो, जय दो, यश दो, शत्रुनाश करो ।

॥ ॐ श्रीमन्महागणाधिपतये नमः ॥

॥ श्री महासरस्वत्यै नमः ॥

"शिव और शक्ति"

श्री पञ्चायतन-पार्थिवपूजन-विधि

प्रातः स्नानोपरान्त भस्म, रुद्राक्षमाला आदि धारणकर पार्थिव पूजन का समारम्भ करना चाहिए। इस कार्य के लिए वस्त्र-शुद्धि का भी ध्यान रखना चाहिए। वस्त्रशुद्धि के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिए।

ईषद्धौतं स्त्रियाधौतं शूद्रधौतन्तथैव च।
प्रसारितं यमदिशि गर्हितं सर्वकर्मसु ॥

अर्थ—साधारण धुला हुआ, स्त्री द्वारा या शूद्र (रजक) द्वारा धोया गया या दक्षिण की ओर छोर करके सूखने के लिए फैलाया गया वस्त्र सभी शुभ कर्मों में निन्दित कहा गया है।

अतः पार्थिवपूजन में उपर्युक्त प्रकार के वस्त्रों को नहीं पहनना चाहिए। रेशमी वस्त्र सर्वदा शुद्ध माना जाता है। शुभ कर्मों में रेशमी वस्त्र आदि धारण किया जाय तो अत्युत्तम होता है।

भस्म :—अग्निहोत्र का भस्म श्रेष्ठ है; किन्तु, यदि वह उपलब्ध न हो तो यथोपलब्ध खड़िया मिट्टी या कंकड़ घिस कर भी उपयोग में लाया जा सकता है। ॐ नमः शम्भवाय कह कर भस्म या उक्त चीजें हाथ से उठानी चाहिए तथा निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर त्रिपुण्ड धारण करना चाहिए।

भस्मधारणमन्त्र :—त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥

तदनन्तर प्रवर एवं शिखा के अनुसार सविधि शिखा में ग्रन्थि लगाकर नित्य कर्म-सन्ध्योपासन, देवर्षि-पितृ-तर्पण सम्पादित करे। तदुपरान्त रुद्राक्ष की माला धारण कर सुन्दर आसन पर बैठे।

आसन :—प्रायः तीन प्रकार के आसन व्यवहृत होते हैं। तीनों के फल भी शास्त्रों में दिये गये हैं। यथा—

कृष्णाजिनैर्ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्रीः व्याघ्रचर्मणि।
कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा ।।

कुशासन सरलता से उपलब्ध है और सब ऋतुओं में उपयोगी भी है। मृगचर्म या व्याघ्रचर्म प्राप्त न होने पर सर्वसिद्धिदायक कुशासन ही ग्रहण करना चाहिए। कुशासन की अनुपलब्धि में गौतमीय योगिनीहृदयतन्त्र में 'चैलाजिनं कुशोत्तरम्' वस्त्रासन का विधान बताया गया है।

पार्थिव पूजन के लिये सामग्री

(१) जल—दो मुँह वाले पात्र कमण्डलु या पञ्चपात्र में गंगाजल।

(२) मृत्तिका—गंगा या पवित्र नदी के गर्भ से प्राप्त अतिशय चिक्कण मृत्तिका (चिकनी साफ मिट्टी)।

(३) अक्षत—धुला हुआ व केशरिया चन्दन से रंगा हुआ या कस्तूरी कर्पूरादियुक्त दोनों हाथ से घिसे चन्दन से रंगा हुआ चावल।

(४) बिल्व पत्र—चक्र रहित शुद्ध सुडौल कोमल अर्ध ग्रन्थियुत धुला हुआ।

(५) मौसमी पुष्प—अपने हाथ से नमःशिवाय मन्त्रोच्चार करते हुए तोड़ा हुआ, सफेद पीला अथवा नीला हो तो अति उत्तम है—जिसमें नीला धतूरा और नील मदार प्रधान है। मालती व लाल पुष्प वर्जित है।

(६) दुग्ध—शुद्ध छना हुआ १ तोला गोदुग्ध।

(७) पञ्चामृत—सम्भव हो तो पञ्चामृत। पर ध्यान रहे शर्करा के कारण पञ्चामृत से स्नान कराने पर मृत्तिका से बना पार्थिव लिंग टूट कर विकृत हो सकता है। पूजान्त के पूर्व ही ऐसा हो जाने पर मनःक्लेश उत्पन्न होगा और मन बड़ा खिन्न हो जायेगा।

इसलिये स्नान व अभिषेक दोनों के लिए गोदुग्ध ही अत्युत्तम है।

(किसी पुष्प का बारीक टोंसा:—कई पुष्पों में भीतर से निकलता है। धतूरे के फूल के बीच में भी बारीक-बारीक होता है। उसी को सर्प की जिह्वा के निर्माण में लगाया जाता है या जो भी वैसा मौसमी फूल में प्राप्त हो सके, वही ले ले।

(९) दीप बत्ती, धूप बत्ती और कर्पूर।

(१०) १ तष्टा (कोपल)।

(११) सम्भव हो सके तो कस्तूरी मृग के सिंग में चांदी का गोमुख लगा अभिषेक, अगर न हो तो सिलवर, पीतल या चाँदी के बने छोटे से अभिषेक

पात्र से भी काम चलाया जा सकता है। पर दूध के लिये ताम्बा निषिद्ध माना गया है।

(१२) गणेश के लिये दूर्वा।
(१३) यज्ञोपवीत।
(१४) नैवेद्य, यथा-सम्भव।
(१५) ऋतु फल, यथा-साध्य।
(१६) रुद्राक्ष की माला मय गौमुखी के जो लाल वस्त्र की न हो।
(१७) ताम्बूल, बीड़ा न हो तो केवल पान सुपाड़ी, अभाव में अक्षत।
(१८) यथा-शक्ति दक्षिणा।

अथ पूजाविधिः

पूर्वाभिमुख—पूरव दिशा की तरफ मुख कर ३" ऊँचे पाटे पर कुशासन पर बैठ सन्ध्योपासनादि से निवृत्त होकर पार्थिव पूजन का संकल्प करे।

ॐ तत्सदद्य मासानां मासोत्तमे मासे अमुक मासे अमुक पक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरे अमुक गोत्रोत्पन्नो अमुक शर्माहं—श्री पार्वतीपरमेश्वर-प्रीत्यर्थं श्रीलिंगपञ्चायतनपार्थिवपूजनमहं करिष्ये।

हाथ में लिया हुआ जल, पुष्पाक्षत, चन्दनादि संकल्प कर तष्टे मे छोड़ दें।

फिर हाथ में जल अक्षत चन्दन पुष्प ले कर—तत्रादौ निर्विघ्नता सिद्ध्यर्थं गणेशाम्बिकयोः पूजनं च करिष्ये।

श्री गणेश का ध्यान

वक्रतुण्ड महाकाय कोटिसूर्यसमप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा।
संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजं।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये॥

इस ध्यान के अनुसार श्री गणेश का ध्यान कर पुष्पाक्षत श्रीगणेश को समर्पित करे।

शरीर-शुध्यर्थ न्यास

ॐ नमः शिवाय हृदयाय नमः—हृदय में पाँचो अंगुलियाँ लगावे। ॐ भूः शिरसे स्वाहा, उसी तरह शिर छूवे। ॐ नमः शिवाय शिखायै वषट् शिखा (चुन्दी) में हाथ लगावे। ॐ नमः शिवाय कवचाय हुँ—दायें हाथ से वायाँ मोढ़ और वायें हाथ से दाहिना मोढ़ एक साथ छूवे। ॐ नमः शिवाय नेत्रत्रयाय वौषट्, तर्जनी और मध्यमा से दोनों नेत्र छूवे। ॐ नमः शिवाय अस्त्राय फट् कहकर दाहिने हाथ को अपने ऊपर से घुमाकर वायें हाथ की गदोली पर तर्जनी व मध्यमा अँगुली फट से दे मारे ताकि शव्द हो।

भूमि-शुद्धि-विधि

शिव का ध्यान कर नीचे के मन्त्र को पढ़ना चाहिए।

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया॥

इस मन्त्र को पढ़ कर तीन वार वायें हाथ से वायीं तरफ की पृथ्वी पर तीन वार अंगुलियों से वायीं तरफ की पृथ्वी को ठोंके (वजावे)।

अव अपने समक्ष रखो चौकी पर से सनी व गूँथी मृत्तिका (मिट्टी) इस मन्त्र द्वारा उठावे—ॐ हराय नमः—मृदाहरणम्।

ॐ महेश्वराय नमः संग्रथनम्, इस मन्त्र से मृत्तिका का अवगुन्ठन दोनों गदोलियों से करे।

फिर शंकर का कोई मनोहारी ध्यान या स्तोत्र जो कण्ठस्थ हो, भाव-विभोर होकर कहते हुये लिंग का निर्माण प्रारम्भ करे।

प्रथम, मटर के बरावर के आकार प्रकार की १० गोलियों का निर्माण करे और चार गोलियों को ⁘ इस प्रकार रखकर उसके ऊपर मध्य में पाँचवीं गोली को अवस्थित करे, यही गौरी की प्रतिमा हुई और इसी प्रकार बची ५ गोलियों का संगठन कर स्कन्द की प्रतिमा बना लें।

अव दो मटर भर मिट्टी और लेकर उसकी भी १ गोली बना लें। यह पिनाकपाणि का प्रतीक होगा। फिर चार मटर के बराबर मृत्तिका लेकर पेड़े के आकार की प्रतिमा वना लें और उस पेड़े पर तर्जनी व मध्यमा

अंगुलियों से नेत्र का आकार बनाकर जरा सा जल मध्यमा के अग्र भाग में लगाकर नेत्र के मध्य में से नीचे की तरफ अर्ध गोला कर घुमाकर सुन्ड का आकार बना ले। यह आपके गणपति हुए।

अगर सम्भव हो सके तो अभ्यास कर चतुर्भुज गणेश मूर्ति, जिनका १ हस्त वरद, दूसरे में मोदक, तीसरे में अँकुश और चौथे में पुस्तक हो या पाश हो; अंगुष्ठ प्रमाण का बना ले। इस प्रकार बड़ी ही रमणीक अंगुष्ठ प्रमाण की सजीव मूर्ति बनती है। शब्दों में लिख कर इसे समझाया नहीं जा सकता। इसे बनाने के दो ही मार्ग हैं। बनाना जानने वाले से बनवा कर देखें और अभ्यास कर स्वयं बनाने का प्रयत्न करें। अथवा इतनी श्रद्धा और तन्मयता से गणेश का ध्यान व आराधना करें कि जो ध्यान आपके मस्तिष्क में अंकित हुआ है, उसे साकार बना लेने की क्षमता आप में ही सूझ-बूझ के साथ उत्पन्न हो उठे और आप सफल हो जायें। ये ही दो मार्ग हैं।

प्रधान लिंग-निर्माण-विधि

अब यहाँ लिंग निर्माण की विधि बताई जा रही है।

यों तो भगवान भूतपति शंकर का प्रतीक लिंग किसी भी प्रकार का बनाया जा सकता है और पूजा की जा सकती है; क्योंकि घी का लड्डू टेढ़ा भी स्वाद देता ही है। यदि आप उसे सुन्दर सुडौल और मनोहारी बनाने का प्रयत्न करें तो वह आपको अधिक आकर्षित करेगा। इसका फल यह होगा कि पूजा के समय उस लिंग की मनोहारिता के कारण चित्त में एकाग्रता रहेगी और यही आपके पूजन का अभिप्राय भी है कि आपका चञ्चल मन एकाग्र होकर आपको परमानन्द प्राप्त करावे।

अब आप मृत्तिका को 'हराय नमः' कहकर उठा लें और उसे खूब मजे में मलकर गोलाकार बना लें। फिर उस गोले के मध्य भाग में ½" स्थान छोड़ कर दोनों तरफ पाचों अँगुलियों के सहारे चित्र संख्या १ के समान दोनों तरफ लम्बोत्तरी आकार बनायें। आपके दाहिने हाथ वाला भाग थोड़ा लम्बा हो और बायें हाथ वाला भाग थोड़ा नाटा व मोटा हो; क्योंकि इसी तरफ वाला भाग चित्र संख्या २ के माफिक अधो भाग याने इस लिंग का पेंदा होगा। चित्र सं० २ के माफिक तर्जनी से दाब देकर उसे कटोरी के समान बनाना होगा; क्योंकि इस तरह कटोरी के समान पेंदी बना देने से लिंग हथेली पर या पूजा की चौकी पर हवा बाँध अच्छी प्रकार स्थिर रहेगा अन्यथा पूजा के समय उसके लुढ़क जाने का भय बना रहेगा।

अब आप चित्र संख्या ३ के समान १/२" मध्य भाग में बचे भाग को घुमा-घुमा कर गोल व शुद्ध कर लें। फिर चित्र संख्या ३ की मुद्रा में लाकर उस गोल बनी जलधरी पर समान दाव देकर मृत्तिका को थोड़ा-थोड़ा आगे सरका कर अर्घं का आकार बना लें।

अब आप चित्र संख्या ४ पर ध्यान देकर उस मुद्रा में आयें और चित्र में प्रदर्शित जलधरी के अग्र भाग को त्रिभुज का आकार दें।

यहाँ तक बने लिंग को बायें हाथ की अनामिका और मध्यमा अँगुलियाँ फैला कर ऐसा रखें कि जलधरी तो अँगुली पर हो और अधो भाग अधर में लटका रहे जैसा चित्र सं० ५ में है।

अब आप दायें हाथ की मध्यमा में जरासा गंगा जल लगाकर लिंग के समस्त भाग को चिकनायें और ध्यान से उसे शुद्ध, सुन्दर, चिकना, सुडौल कर लें जैसा चित्र सं० ७ में है।

गर्मी के दिनों में अकसर सूखी हवा लगने के कारण लिंग-निर्माण में थोड़ा व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। बनाते समय मृत्तिका जगह-जगह से फट जाती है। इसलिए यह आवश्यक है कि देश, काल, जलवायु पर ध्यान रखते हुए मृत्तिका में जल की मात्रा कम-व-वेश करते रहना चाहिए। अगर थोड़ी बहुत फटन किसी कारणवश आ ही जाये तो अँगुली में जल लेकर सावधानी से फेर देने व दबा देने से फटन मिट जाती है।

अब आप इसी परिस्थिति में लिंग के मस्तक पर ३ दाना धुला हुआ अक्षत सम भाग से तीन तरफ उसका कोना बाहर करके चढ़ायें पर तीनों का दूसरा कोना शंकर के मस्तक पर बीच में मिला रहे।

अब आप चित्र संख्या ६ देखें और उसी प्रकार उमा, स्कन्द, गणेश, पिनाक पाणि यथा-स्थान प्रतिष्ठित करें। सर्प अगर बनाया है तो उसे पहले लिंग में लपेट कर प्रभावोत्पादक मुद्रा में, अकड़ कर फुफ्कारितावस्था में जो मुद्रा सर्प की होती है, उसे स्थिर कर दें और सर्प को जहाँ जहाँ से लिंग पर लपेटना हो वहाँ वहाँ थोड़ा जल की रेखा पहले बना दें तभी वह सर्प भगवान के लिंग से चिपकेगा, अन्यथा आधारहीन हो गिर पड़ेगा।

नागराज वासुकी की रचना

बड़ी सुपारी के बराबर मृत्तिका लेकर उसमें थोड़ी रुई मिला लें। बार बार तोड़ें जोड़ें और उचित मौसम का ध्यान देते हुए लिंगनिर्माण वाली मृत्तिका से इसमें कुछ नमी अधिक रखें और उसे दोनों गदोली से ऐसा बेलें कि बढ़ रही उसकी

पूँछ नीचे अधो भाग में लटकती बढ़ती रहे। करीब ४,५'' बढ़ जाने पर उसे अब एक शीशे पर लेटाकर बेलें और सर्प के आकार का बनायें। यह ध्यान रखें कि मुख वाला स्थान उसके गले की मोटाई से करीब द्विगुणित मोटा बना रहे। अब आप अपने दोनों हाथों की मध्यमा व अँगूठे से दबाकर फण की चौड़ाई बना लें; किन्तु बीच फण में रीढ़ उभर जाय, ऐसा ध्यान रखें।

रीढ़ की लाइन में बन रहे गोल मुँह को नीचे से जरा सा चिपटा बनालें। यही उसका ऊपर वाला ओष्ठ होगा।

अब किसी पुष्प का दो बारीक सुर्खा लेकर उसे चौकी पर इस प्रकार रखें कि उन दोनों का पिछला भाग $\frac{1}{4}''$ तक आपस में सटा हो और बाकी का आगे वाला भाग आपस में $\frac{1}{2}''$ की दूरी पर अवस्थित हो।

दो जव बराबर गिली मिट्टी लेकर जव के ही आकार में बना कर उस सुर्खे पर ऐसे थोप कर उठा लें कि उसका मिला हुआ भाग उस मिट्टी में चिपक कर उठ आये और उसे फण के आगे चिपटे किये स्थान पर जरा सा पानी लगा कर ऐसा चिपकायें कि ओठ और मुँह तथा लपलपाती दोहरी जीभ आपको सच्चे सर्प का भास करा देने में सक्षम हो उठे।

अब आप बेलपत्र की दन्डी से उस सर्प को चन्दन द्वारा चरण चिन्ह तथा कुन्द की धारी वगैरा देकर आकर्षक सजालें। भीगे चावल की दो कनखी नाखून से तोड़ कर उसकी आँखों के स्थान पर चिपका दें। थोड़ा जल उस सर्प के सारे शरीर में अँगुली से लगा कर चिकना लें, साथ ही और थोड़ा जल उसी अँगुली द्वारा लगा कर उसे थोड़ा मुड़ने लायक बना कर भगवान भोले के ऊपर चित्र सं० ७ के समान लगा दें। अब आवाहन-पूजन के लिए हाथ धो-पोंछ कर बायें हाथ की गदोली पर उन्हें अवस्थित कर शान्त चित्त होकर पूजन अर्चन प्रारम्भ कर दें।

उपर्युक्त विधि के अनुसार लिंगनिर्माण पूर्ण होते ही लिंग के मस्तक पर अक्षत अवश्य चढ़ा देना चाहिए। यदि आप इसमें चुके तो उस पार्थिव पूजा का पूर्ण फल बजाय आपके रावण के हक में मान लिया जायेगा और आपका सारा उप-क्रम व्यर्थ सिद्ध हो जायेगा; क्योंकि औढरदानी बाबा भोले का उसे ऐसा वरदान पूर्व काल में प्राप्त हो चुका है।

रावण को प्रकृति ने इतनी साधना-शक्ति दी थी कि वह अपनी भक्ति और शक्ति—सभी में महान् था। आप इतने से ही उसकी कल्पना कर लें कि पहले तो वह चारों वेदों का प्रकाण्ड पण्डित था, फिर उन वेदों के सस्वर उच्चारणार्थ १० मुख, स्वर देने के लिए २० भुजायें और सबके समन्वित संचालनार्थ २० भुजा १०
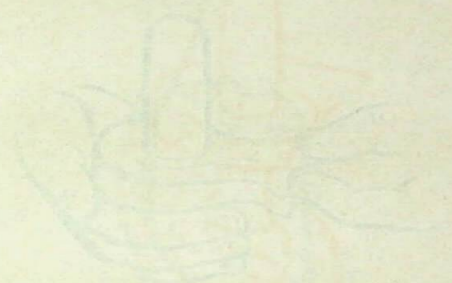
लत्तरी के अग्र भाग के अर्घे को त्रभुज रूप दे तर्जनी व अंगूठे से
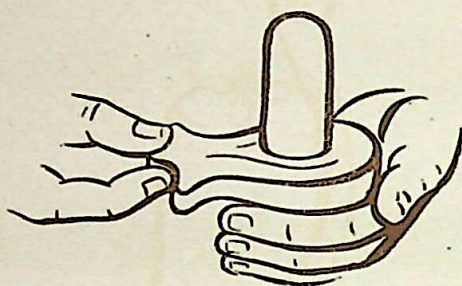
(चि० ५)

पार्वतीस्कन्द गणेश पनाकपाणि के स्थापन का स्थान जलधरी पर
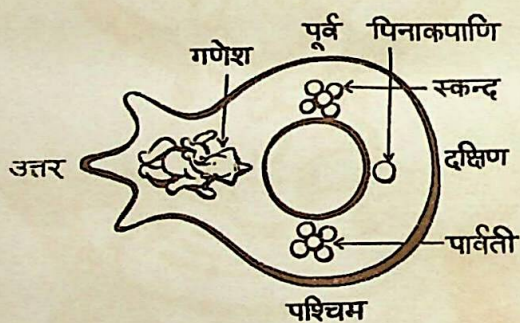
(चि० ६)

पूजा के लिए पार्थिव लिंग

(चि० ७)

यह षट्कोंड़ यन्त्र बाँयें हाथ के गदोली पर चन्दन से
वेल कलम से बनाकर लिंग स्थापित कर पूजन करें ।

मुख पर एक हृदय का अनुशासित नियन्त्रण। भला सोचें कि महान् रावण के लिए अब क्या दु:साध्य रहा ? इन्हीं महान् साधनाओं के कारण ही उसे यह अकृत-फल-प्राप्ति का वरदान भगवान् औढरदानी ने दे डाला था।

शंकर का अनन्य भक्त होने के नाते उसे राजनीति और लोकनीति का गूढ़तम रहस्य मालूम था। इस कारण जब रावण स्वर्ग जा रहा था तब मर्त्यलोक से उन गूढ़ नीतियों का लोप न हो जाय, इसलिए स्वतः मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने अनुज श्री लक्ष्मण को उससे नीतिशास्त्र के गुढ़ सूत्रों की शिक्षा के लिए उसके पास भेजा था।

संक्षिप्त पार्थिव श्रृंगार विधि

मौसमी सुगन्धित पुष्पों की १ माला करीब ५" गोलाई की और १ माला २" के गोलाई की बना लें। लिंग के चारों तरफ गाढ़ा चन्दन लेप दें ताकि चढ़े फूलों को अपने में चिपका सके और तीन गुलाबी गुलाब के फूल उमा, स्कन्द, पिनाकपाणि पर ऐसे चढ़ायें कि लेप किये चन्दन से चिपक कर वह पतली जलधरी पर से गिरने न पाये। फिर आप बड़ी माला ऐसे चढ़ायें कि लिंग से जलधरी के नीचे तक लटक कर मस्तक के पीछे चढ़े गुलाब पुष्प पर वह टिकी रहे। आगे बैठे गणेश का दर्शन पूरा होता रहे और अब इसके ऊपर २" वाली माला चढ़ायें जो लिंग के मस्तक मात्र पर रुकी रह कर गणेश के मस्तक पर टिकी रहे।

अब दो बेलपत्र शंकर के मस्तक पर चढ़ायें और १ बेलपत्र जो अत्यन्त कोमल, सुन्दर, सुडौल हो उसकी डन्डी तो पीछे की तरफ किसी माला की सन्धि में खोंसकर खड़ी कर दें। उस पर यदि नमः शिवाय लिखा हो तो और बढ़िया बात होगी। अब २ बेलपत्र जो आपने पहले चढ़ाये हैं उस पर थोड़ा अक्षत चढ़ाकर १ विकसित गुलाब पुष्प का मुख अग्र भाग की तरफ करके चढ़ा दें—और अपनी बुद्धि व प्रेम के अनुसार जितना भी सजा सकें, आकर्षक बना सकें, अच्छा है; क्योंकि सुन्दरता की कोई सीमा नहीं है, फिर भगवान् की सुन्दरता को निखारना मनुष्य की शक्ति के परे की बात है।

फिर भी भक्तिभावेन आप जो भी कर सकें उससे आपको मनस्तोष और शान्ति प्राप्त होगी।

कभी-कभी अवकाश के समय इच्छा होती है कि आज तो मूर्त्ति इतनी कमनीय बन गई है कि इसे देखते रहते जी नहीं भर रहा है। ऐसी सूरत में विसर्जन करने का जी नहीं चाहता।

तब चाहिये कि अपने समक्ष चौकी पर इन्हें अवस्थित कर अधिक समय तक दर्शन किया जावे; पर इसके लिए देर तक बायें हाथ पर रोकना ठीक नहीं होगा, शरीर के हिलने-डुलने पर मस्तक पर चढ़े फूल लुढ़क कर गिर सकते हैं, जिससे अकल्याण की सम्भावना आशंकित हो जाती है। इसलिये शंकर को ससम्मान रोक रखने के लिये अभिषिक्त एवं अभिमन्त्रित पुष्पासन की विधि आगे देखें।

वैसे तो सुन्दर आसन कल्पना से हजारों प्रकार के सजाये-संवारे जा सकते हैं; उनमें से १-२ नीचे दिये जा रहे हैं ?

पूजन की चौकी होगी ही अथवा पत्थर धो कर उसी पर बना ले; पर सुन्दर होगा ९" ऊँची संगमरमर की चौकी को पोंछ कर उसी पर अनार या बेल की कलम से अथवा किसी फूल से ही षट्कोण करीब ९" लम्बाई-चौड़ाई में बना लें और कोण की लाइनों पर १-१ पारिजात या और कोई सुन्दर फूल नीचे लिखे मन्त्रों को मन ही मन पढ़कर पंक्ति वद्ध रखें। अब आपका यह मन्त्राभिषिक्त पुष्प-कृत षट्कोण मन्त्र बन गया।

मन्त्रः :—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॐ नमः शिवाय।

अब इसके छहो बाहरी कोणों में, अगर मिल सके तो नीली कौवा ठोठी का पुष्प अर्घ्याकार रखें या कोई दूसरा ही — फिर त्रिकोण के भीतरी ३ त्रिकोणों में लाल गुलाब के फूल भर दें। इसी प्रकार बाकी के तीन भीतरी कोणों में ३ दूसरे रंग के फूल ऊर्ध्वोन्मुख भर दें। अब इस अत्यन्त सुन्दर मनोहारी षट्कोणमन्त्र के मध्य में आप शिव लिंग को 'ॐ धराय नमः' कह कर स्थापित करके यथासाध्य जप, स्तोत्र, प्रार्थना रुद्राभिषेकादि करें और अगर कुछ भी न आता हो तो आँखें बन्द कर उसी का ध्यान करें। यदि यह भी न हो सके तो भाव-विभोर होकर मन भर रो लें, अपनी परिस्थिति कहें और वर देने की विनती करें।

यह आप निश्चित जानें कि आपके पास आपका कुछ नहीं है जो उसे आप अर्पण करें। सब उसी की उत्पत्ति है फिर आप क्या दे सकते हैं ? आपके पास आपका केवल प्रेमाश्रु है। अगर आप यह सस्नेह दे सकें तो फिर कल्याण ही कल्याण है।

पूजन-विधि

अब आप बने हुये शंकर की जलधरी पर उमा, स्कन्द, गजानन, पिनाकपाणि की प्रतिमाएँ स्थापित करें। अपने बायें हाथ की गदोली पर तीन दाना अक्षत रख कर उस पर शंकर के पार्थिव-लिंग की स्थापना करें।

प्राण-प्रतिष्ठा

दाहिने हाथ में जल लेकर यह विनियोग पढ़ें।

ॐ अस्य श्री प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुःसामाथर्वाणि छन्दांसि प्राणशक्तिर्देवता आँ बीजं ह्रीं शक्तिः क्रों कीलकं अस्मिन् पार्थिवलिंगप्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः' (हाथ का जल छोड़ दें)।

प्राण का आवाहन

ॐ आँ ह्रीं क्रों यँ रँ लँ वँ शँ षँ सँ हँ सः। सोऽहं पार्वतीपरमेश्वराभ्यां प्राण इह प्राणाः, प्राणम् आवाह्यामि स्थापयामि (लिंग पर अक्षत चढ़ावें)।

जीव आवाहन

फिर वही—ऊपर का पूरा मन्त्र पढ़ कर–सोऽहं पार्वतीपरमेश्वरस्य जीव इह इच्छति जीवाः, जीवम् आवाह्यामि। (अक्षत छिड़किये)।

यहीं पर मैं यह भी निवेदन कर देना चाहता हूँ कि यह काल्पनिक पूजा-विधि केवल प्रेमाश्रु मिश्रित श्रद्धा का उन्मेष मात्र है।

इस लिखित कल्पना से और प्राचीन वेद-पुराणों या मन्त्रशास्त्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है और न उनका रञ्च मात्र इससे खण्डन ही हुआ है; बल्कि किसी न किसी प्रकार प्राचीन वेद वाक्यों की प्रशस्ति ही हुई है।

इन विषयों का सम्बन्ध किसी भी व्यक्तिविशेष से नहीं मानना चाहिये; क्योंकि जहाँ तक हम समझते हैं यज्ञादि सत्कर्मों के बड़े भारी शास्त्र प्राचीन ऋष्यादि साधकों ने लिख छोड़े हैं। शायद उनके गूढ़ रहस्यों को समझने वाले, करनेवाले लोग वर्तमान समय में बहुत कम ही होंगे। हममें तो उसे समझने मात्र कि भी बुद्धि भगवान् ने नहीं दी है।

इसलिये उन सब विषयों पर लिखना मेरी तुच्छ बुद्धि के परे की बात है।

यह जो कुछ भी लिखा गया है वह शास्त्रों के कुछ श्लोकों के आधार पर कल्पनामात्र है। इसमें नियमन या पूर्व लिखित धर्म ग्रन्थों के नियमनों का कोई विषय नहीं दिया गया है। यह केवल औढरदानी भोले की औढर ना-समझी पूजा मात्र है।

इसे लिखने का केवल इतना आधार माना जा सकता है कि जिस प्रकार

हम मनुष्य किसी अत्यन्त भोले बालक को देखकर गदगद व प्रसन्न हो उठते हैं, उसी प्रकार देवाधिदेव महादेव भी ऐसे भोले हैं कि उनका नाम ही भोलानाथ पड़ गया और यह नामके अनुसार प्रसिद्ध है कि औढरदानी भोलेनाथ बगैर सोचे-समझे केवल भोलेपन और आस्था देखकर प्रसन्न हो जाते हैं। उन्हें जाति, धर्म, कर्म, पाण्डित्य, चातुरी, विद्वत्ता इन सब में कोई विशेषता प्रतिलक्षित नहीं होती। उनके समाज में विद्वत्ता के बजाय मूर्खता पर विशेष कृपा बरसा करती है और वह मुझमें पर्याप्त है।

उदाहरणस्वरूप पूजनोपरान्त उनके समक्ष बं बं बों बों बकरे का स्वर विशेषता रखता है। वही मात्र मैंने करने का प्रयत्न किया है।

इन्द्रियों का आवाहन

ॐ ऐं ह्रीं''—यह मन्त्र पूरा पढ़ कर—"सोहं पार्वती परमेश्वरस्य सर्वेन्द्रियाणि, वाङ्, मनः, चक्षुः, श्रोत्रं, जिह्वा, घ्राण, स्पर्श, आवाहयामि स्थापयामि।'' यह कहते हुए अक्षत छिड़कता रहे।

अथ गर्भाधानम्

फिर वही "ॐ ऐं ह्रीं''—पूरा मन्त्र पढ़ कर सोहं अस्मिन् पार्थिव लिंगे गर्भाधानम् , कह कर २८ वार ॐ नमः शिवाय का जप करके अक्षत चढ़ावें।

पूर्ण आवाहन एवम् स्थापना

ॐ अस्मिन् पार्थिवलिङ्गे पार्वतीपरमेश्वरम् आवाहयामि स्थापयामि। अक्षत लिंग पर चढ़ावे।

ॐ उमायै नमः उमाम् आवाहयामि स्थापयामि। अक्षत लिंग के वाम भाग में उमा पर चढ़ावें।

ॐ श्री स्कन्दाय नमः स्कन्दम् आवाहयामि स्थापयामि।

ॐ श्री गजाननाय नमः गजाननम् आवाहयामि स्थापयामि अक्षत लिंग के दक्षिण भाग में गणेश पर चढ़ावे।

ॐ श्री पिनाकपाणये नमः पिनाकपाणिम् आवाहयामि स्थापयामि। पृष्ठ भाग में अक्षत चढ़ावे।

शंकर, उमा, स्कन्द, गणेश, पिनाकपाणि का ध्यान और विनीत प्रार्थना

स्वामिन् सर्वजगन्नाथ यावत् पूजावसानकम्।
तावत् त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेऽस्मिन् सन्निधो भव॥

अब आपके आमन्त्रित आराध्य देवगण आपके समक्ष हैं, ऐसा मानकर उनका स्वागत करें। उन्हें आसन देकर उनका चरण प्रक्षालन करें।

ॐ आसनार्थे पुष्पम् समर्पयामि। हथेली पर अक्षत चढ़ावें।

श्री शंकराय नमः। पादप्रक्षालनार्थे गंगाजलं समर्पयामि। आचमनी से तष्टे में जल गिरावें।

श्री उमाग्रै नमः। पादप्रक्षालनार्थे गंगाजलं समर्पयामि।

ॐ स्कन्दाय नमः। पाद प्रक्षालनार्थे गंगाजलं समर्पयामि। आचमनी से तष्टे में जल गिरावें।

ॐ श्री गणपतये नमः। पादप्रक्षालनार्थे गंगाजलं समर्पयामि। आचमनी से जल गिरावें।

ॐ नागराजवासुकिसहित चन्द्रमसे गंगादेव्यै नमः। पादप्रक्षालनार्थे गंगाजलं समर्पयामि।

ॐ नन्दीश्वरसहितसिंहाय नमः। पादप्रक्षालनार्थे गंगाजलं समर्पयामि।

ॐ सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। ब्रह्माविष्णुमहेश्वरेभ्यः नमः, इन्द्राय नमः। पादप्रक्षालनार्थे गंगाजलं समर्पयामि।

ॐ सर्वेभ्यो गणेभ्यो नमः। पादप्रक्षालनार्थे गंगाजलं समर्पयामि।

ॐ सर्वेभ्यो शिवभक्तेभ्यो नमः। पादप्रक्षालनार्थे गंगजलं समर्पयामि।

अब एक पुष्प को गंगा जल में डुबोकर उसी से पार्थिवलिंग को १-२ बूंद जल मात्र से स्नान करायें, (स्नान का मन्त्र)—वैदिक या पौराणिक कोई भी मन्त्र कहें।

त्र्यम्वकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वा रुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

दुग्धाभिषेक एवं तर्पण

अब किसी वारीक छिद्र वाले छोटे कमंडलु में थोड़ा गोदुग्ध ले लें और नीचे लिखे एक-एक मन्त्रोच्चार के साथ एक-एक बूंद लिंग के मस्तक पर चढ़ाते चलें। ध्यान रखें कि यदि दुग्ध से या जल से ज्यादा सिञ्चन करेंगे तो लिंग के बिखर जाने की आशंका रहेगी। अगर कमण्डलु न हो तो एक कटोरी में दूध रखकर पुष्प डुबो डुबो कर केवल मन्त्रसमाप्ति पर ही मार्जन करें।

मार्जन-तर्पण का मन्त्र

ॐ देवाय नमः—तर्पयामि। ॐ सर्वदेवाय नमः—तर्पयामि। ॐ पशुपतिदेवाय नमः—तर्पयामि। ॐ उग्रदेवाय नमः—तर्पयामि। ॐ रुद्र देवाय नमः-तर्पयामि। ॐ भीम देवाय नमः-तर्पयामि। ॐ अष्टदेवाय नमः—तर्पयामि। ॐ सर्वाय क्षितिमूर्तये नमः—तर्पयामि। ॐ भवाय जलमूर्तयेनमः—तर्पयामि। ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः तर्पयामि। ॐ भीमायाऽऽकाशमूर्तये नमः—तर्पयामि। ॐ महादेवाय सोममूर्तये नमः—तर्पयामि।

ॐ अमृताय नमः शिवाय नमो नमः।

अथ पूजन

ॐ श्री पार्थिवेश्वराय वस्त्रोपवस्त्रार्थे अक्षतान् समर्पयामि

वस्त्रोपवस्त्र चढ़ाने का मंत्र

दिगम्बरः दिग्वासा चिताभस्ममनोहरः।
व्याघ्रकृत्तिपरिधानः पुण्यं यच्छतु मेऽनिशम्॥

यज्ञोपवीत :—यज्ञोपवीत नित्य चढ़ाना मुश्किल है। इसलिये मन्त्र पढ़कर यज्ञोपवीतार्थं अक्षतान् समर्पयामि कहकर अक्षत चढ़ा दें।

विनियोग :—ॐ यज्ञोपवीतमिति मन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः लिंगोक्ता देवताः श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानफलसिध्यर्थे यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः।

मंत्र

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञः स्थात्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि।

चन्दन चढ़ाने का मंत्र

ॐ श्रीखंडं चन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरं।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ चन्दनं प्रतिगृह्यताम्॥

पुष्पमाला

मन्त्र

ॐ माल्यादीनि सुगंधीनि मालत्यादीनि वै प्रभो।
मया दत्तानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर॥

विल्व पत्र

सूचना—वेलपत्र अत्यन्त कोमल वज्ररहित अर्घ ग्रन्थि युक्त होना चाहिये। उसे भलीभाँति धो-पोंछ लें।

(१) ॐ त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रियायुधं।
त्रिजन्मपाप - संहारमेकविल्वं शिवार्पणम् ॥

(२) ॐ त्रिशाखैर्विल्वपत्रैश्च अच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः।
तव पूजां करिष्यामि एकविल्वं शिवार्पणम् ॥

(३) ॐ तुलसी विल्वपत्रैश्च पूजितो नन्दिकेश्वरः।
कोटिकन्यामहादानमेक विल्वं शिवार्पणम् ॥

(४) ॐ अखण्डैर्विल्वपत्रैश्च पूजितो पार्थिवेश्वरः।
सर्वपापशमनमेकबिल्वं शिवार्पणम् ॥

(५) ॐ भगवत्त्रयाय समायुक्तमेकविल्वं शिवार्पणम्।

इस तरह पाँच विल्व पत्र एक-एक मंत्रोच्चार के बाद श्रद्धापूर्वक अर्पण करें। हो सके तो केशर या चन्दन और वेलपत्र की दन्डी से उसकी तीनों पत्तियों पर ॐ नमः शिवाय या रामनाम लिखकर चढ़ावें। उसका बड़ा माहात्म्य है।

वेलपत्र के उपरान्त सुन्दर सुगन्धित सुविकसित एक-एक पुष्प गुलाब या धतूरे का या जो भी मिले, चढ़ाकर लिंग को सुशोभित करें।

अक्षत

अक्षताश्च सुरश्रेष्ठ कुङ्कुमोक्ताः सुशोभिताः।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ॥

विकसित नील धतूरा, नील मन्दार के पुष्प शंकर को वहुत प्रिय हैं। अथवा अविकसित सफेद धतूरा पुष्प जो बड़े मोती के सदृश होता है, उसकी माला जहाँ तक श्रद्धा हो, बनाकर चढ़ावें।

धूप

वनस्पतिरसोद्भूतं गन्धाढ्यं सुमनोहरं।
आघ्रेयं सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

दीप

आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया।
दीपं गृहाण देवेश त्रैलोक्यतिमिरापह ॥

नैवेद्यं पुरतः स्थाप्य

शर्करा-खण्ड-खाद्यानि दधि-क्षीर-घृतानि च।
आहारं भक्ष्यभोज्यं च गृहाण परमेश्वर॥
इति नैवेद्यं निवेदयामि।

दूध, दही, शर्करा (चीनी) फल मीठा जो भी उपलब्ध हो उसे निवेदित करें। कुछ भी न हो तो वेल की एक पत्ती तोड़कर उसी को पत्तल मानकर शुद्ध श्वेत धुला हुआ अक्षत परस दें और उसी को गोमुद्रा प्रदर्शित करते हुये नेत्र मुद्रित कर (वन्द कर) निवेदित करें।

जल से आचमन

प्राणाय स्वाहा पानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा॥

तीन आचमनी जल तष्टे में गिरा दे।

प्रदक्षिणा का मंत्र

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि विनश्यन्ति प्रदक्षिणां पदे पदे॥

इस स्थान पर यह विषय विचारणीय है। प्रसंगवश इस पर विवेचन आवश्यक है। ऊपर के मंत्र का भावार्थ है कि पूर्व जन्मों में हमने जो कुछ भी पाप किये हों वे सभी आपकी की जा रही प्रदक्षिणा के एक-एक पैर चलने पर नष्ट हो जायें। इससे यह सिद्ध होता है कि देव के चारों ओर घूम-घूम कर प्रदक्षिणा करनी चाहिये; परन्तु यहाँ परिस्थिति दूसरी है। वाम हस्त पर जब प्रभु स्वयं विराज रहे हैं तो प्रदक्षिणा किसकी और कैसे एक-एक पद चलकर करना सम्भव हो सकेगा ?

प्रदक्षिणा का दूसरा पक्ष

शास्त्रों में इसका दूसरा पक्ष यह निहित है कि घूम-घूम कर प्रदक्षिणा करना जहाँ सम्भव न हो वहाँ दोनों हाथ की उँगली प्रसारित कर हाथ की दोनों गदोली नीचे करके देव के ऊपर केवल दायें वायें एक दूसरे के नीचे फेरना चाहिये। किन्तु अगर देव प्रतिमा समक्ष हो तभी यह भी सम्भव है। यह वड़ी वैज्ञानिक विधि है। दसो उँगलियाँ हिलते समय अपने वीच लाइन काटती हैं, उससे हाई फ्रिक्वैन्सी उत्पन्न होकर विद्युत् शक्ति उत्पन्न होती है। उस कटाव संचार के वीच देव से, जो उँगलियों के छिद्रों से आगे रहते हैं, आपकी

दृष्टि बार-बार कटती है तो आपका चित्त विद्युत-संचार के कारण स्तम्भित होकर एकाग्र हो जाता है। किन्तु हमारे लिए यह प्रदक्षिणा भी असम्भव ही है; क्योंकि एक हाथ पर तो प्रभु विराज रहे हैं। अतः कोई दूसरा विकल्प सामने न आ सका और बहुत समय तक सिर्फ एक हाथ का पंजा शंकर के मस्तक के ऊपर लूले की तरह केवल मन के सन्तोष के लिये घुमाया जाता रहा।

कभी-कभी यह क्रिया बड़ी भद्दी सी प्रतीत होती थी। ऐसा लगता था मानों जाते समय हम उन्हें हाथ से चिढ़ा रहे हों। इस क्रिया से मन को थोड़ा भी सन्तोष नहीं होता था और चित्त खिन्न हो जाता था। फिर भी, बहुत दिनों तक यही क्रिया-क्रम, अर्थात् लूले के समान हाथ हिलाना और प्रदक्षिणा करना, चलता रहा। कुछ समय बाद प्रदक्षिणा का एक काल्पनिक स्वरूप मन में उठ खड़ा हुआ जो इस प्रकार है :—

जब किसी महान् देव का आवाहन कर श्रद्धायुत पूजन-अर्चन किया जाय और उसका समापन अति सन्निकट हो, देव चलने को उद्यत हों उठ खड़े होते हैं, गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ गच्छ त्रैलोक्यरक्षक के पूर्व ही और उस समय जब कि हमारी पूजा का एक अध्याय अभी शेष हो, तब हमारी धारणा कायम नहीं रह सकती।

अतः हमारे लिये यही विकल्प है कि जाने के लिये उद्यत शिव-शक्ति के, जो सामने खड़े हैं, चरणों को उसी प्रकार पकड़ लें जैसे सागर की उत्ताल तरंगों में बहता हुआ एक मनुष्य बीच में पड़ने वाले किसी विशाल वृक्ष के तने को पकड़ कर लिपट जाता है और बराबर अपने दायें-बायें गाल को उस तने पर चिपकाये हुये किसी तरह से आधार पाने के लिए घड़ी की सूई के समान रेंगने लगता है।

उस अश्वत्थरूपी शक्ति और शिव के चारो चरण जिस समय जाने को उत्सुक हैं और हाथी दाँत के खड़ाऊँ पर स्थित उसी समय व्यक्ति प्रभु की ओर उन्मुख होकर आतुरता से देखता है और दीन भाव से कहता है, यदि आप मुझे आलम्बन-हीन करके चले गये तो इस अथाह सागर में मैं डूब जाऊँगा। इससे दयार्द्र हो, वात्सल्य से भगवान् भोलेनाथ अपने आजानुबाहु को भक्त के मस्तक पर रखकर अनेक वरदान शक्ति के संकेत मात्र से दे डालते हैं।

ऐसी ही मानसिक परिक्रमा पूर्वध्यानावस्थित पार्थिव-पूजनार्थी के लिये हमारे विचार से उपयुक्त होगी।

मन्त्र पुष्पाञ्जलि

हाथ में फूल अक्षत चन्दनादि लेकर खड़े होकर प्रार्थना करके भगवान् सदाशिव को पुष्पाञ्जलि अर्पण करें ।

मन्त्र

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।
तेह्नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।
ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने । नमो वयं वै श्रवणाय कुर्महे ।
समे कामान्कामकामाय मह्यम् । कामेश्वरो वै श्रवणो ददातु ।।
कुवेराय वै श्रवणाय महाराजाय नमः । ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात् । पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति । तदप्येष श्लोकोऽभिगीतः मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन्गृहे । आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति ।।
ॐ भूर्भुवः स्वः नमः शिवाय मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

ॐ रक्ष रक्ष महादेव रक्ष त्रैलोक्यरक्षक ।
भक्तानामभयं कर्त्ता त्राता भव भवार्णवात् ।।
वरदस्त्वं वरं देहि वाञ्छितं वाञ्छितार्थद ।
अनेन सफलार्घ्येण फलदोऽस्तु सदा मम ।।

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं ।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो ।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ।।

क्षमापन

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा,
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विदितमविदितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व,
जय जय करुणाब्धे, श्रीमहादेव शम्भो ।

विसर्जन

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजाञ्चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ।।

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर॥

अनेन श्रीमहादेवपञ्चायतनपार्थिव-पूजनकृतेन तेन श्रीभवानीशंकर-देवते प्रीयेतां न मम।

ॐ नमः पार्वतीपते, हर हर महादेव।

पूजन परिपूर्ण करके कुछ जप भी अवश्य करना चाहिये। अगर एक माला भी करना सम्भव न हो तो कम से कम २८ बार इच्छित नामजप अवश्य कर लेना चाहिये।

पार्थिव-पूजन के प्रारम्भिक काल में एक रावणकृत स्तोत्र जिसमें केवल शंकर की ही प्रशस्ति थी, कंठस्थ करके रोज पाठ करता रहा। एक दिन एक हाथ पर पार्थिव रखकर उक्त स्तोत्र का पाठ कर रहा था कि एकाएक बीच में ही भूल गया।

कई बार प्रारम्भ से दुबारा पढ़कर पूरा करने का प्रयत्न किया, पर हर बार असफलता ही हाथ लगी। हृदय दुखी हो गया। आँखों से आँसू आने लगे। कण्ठ अवरुद्ध हो गया। मुझे बड़ा भय हुआ कि यह मेरे किन पापों का दण्ड मुझे मिल रहा है।

येन केन प्रकारेण विसर्जन कर उठ गया। सारा दिन सोचता रहा। रामायण निकाली और देखा, किन्तु रावणकृत उक्त स्तोत्र घबराहट के कारण या भगवान् जाने किस लिये नहीं मिला।

मुझे लगा कि जैसे मैं अंधा हो गया हूँ। जिस पुस्तक से देखकर मैंने उसे याद किया था उसीमें मुझे नहीं दिखाई दे रहा था। यह हमारा परम दुर्भाग्य ही कहा जायगा।

खिन्न होकर मन ही मन मनन करता रहा। दूसरे दिन जैसे बोध हुआ कि कोई अत्यन्त दयार्द्र होकर कह रहा है कि अरे मूर्ख, तूने बुलाया तो मेरे सारे परिवार को; किन्तु गीत केवल मेरा गाता है। तेरे इसी आचरण के कारण मेरे परिवार के सदस्य आने में अनुत्साहित होते हैं।

मैं आश्वस्त हुआ। प्रभु की प्रेरणा जानकर मैं उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हुआ और उनके आदेश के अनुसार उस स्तोत्र के पाठ करने का विचार ही हृदय से निकाल दिया।

उस वक्त कोई उपयुक्त स्तोत्र दृष्टिगत न होने के कारण हमारे मन में एक सीधी-सादी क्षमापन प्रार्थना उन्हीं के आशीर्वाद से जागृत हो उठी। इस

प्रकार चाहे भले ही वह प्रार्थना उल्टी हो, अशुद्ध हो, इससे हमें कोई मतलब नहीं, हमारे प्रभु को हमारे मूर्खराज होने के कारण वह अत्यन्त प्रिय है।

शंकर परिवार का यह लघु उपेक्षा मेरे द्वारा अकस्मात् या यों कहिये कि जानकारी न होने के कारण हो गयी। इसके क्षमाप्रार्थना-स्वरूप शंकर परिवार के आवाहन पर जो भी अनामंत्रित जीव प्राणी उनके साथ आवें (आना अनिवार्य है) उन सबको अलग-अलग इस रूप में नमस्कार करने लगाः—

अब हाथ पर से पार्थिव को उतार कर सामने रखकर साष्टाङ्ग प्रणाम के साथ बार-बार कहें:—

शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि शंकराय नमोस्तु ते॥ १॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि श्री उमायै नमोस्तु ते॥ २॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि श्री स्कन्दाय नमोस्तु ते॥ ३॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि श्री गजाननाय नमोस्तु ते॥ ४॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि श्री पिनाकपाणि नमोस्तु ते॥ ५॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि श्रीगंगासहितवासुकिचन्द्र नमोस्तु ते॥ ६॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोस्तु ते॥ ७॥
नवशक्ति स्वरूपा—प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चित्रघण्टेति कुष्माण्डेति चतुर्थकम्।
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायिनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्।
नवमं सिद्धिदात्री च नवशक्ति नमोस्तु ते॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि श्री नन्दीश्वराय श्री सिंहराजाय नमोस्तु ते॥८॥
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि श्रीदुःशानन अर्चिताय
श्री वैद्यनाथाय नमोस्तु ते॥ ९॥

शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि श्री रामचन्द्रपूजिताय स्थापिताय
श्री रामेश्वराय नमोस्तु ते ।।१०।।
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि सर्वेभ्यो गणेभ्यो नमोस्तु ते ।।११।।
शरणागत दीनार्त परित्राण परायणे।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि सर्वेभ्यो शिवभक्तेभ्यो नमोस्तु ते ।।१२।।

इस प्रक्रिया से क्या लाभ होगा यह तो मैं नहीं जानता; परन्तु प्रत्यक्ष फल यह है कि नमस्कार से सुन्दर व्यायाम अवश्य हो जाता है जिससे अनेक लाभ हैं।

पीछे मैं लिख चुका हूँ कि पूजनोपरान्त वह प्रार्थना, जो रावण शंकर की किया करता था, एक दिन बीच में भूल गया और बहुत वार फिर याद करने का प्रयत्न करने पर भी जब सफलता नहीं मिलो तो निराश होकर वहीं विश्राम लेकर उठ गया था। उस समय ॐ नमः शिवाय इसी पञ्चाक्षरी का नाम जप कर लिया करता था। अब सोचने लगा, हो सकता है यह भी उचित न हो। महीनों सोचता रहा और उसी शंकर से निवेदन करता रहा कि हमारी इस शंका का समाधान कर दें। मेरे मन में यह शंका उत्पन्न हो गयी कि प्रभु! तेरे नाम का जप करने में मेरा मन नहीं लगता और एकग्रता नहीं आ पाती।

जब जल्दी कोई विकल्प नहीं मिला तब मैं लकीर पीटने के समान "ॐ नमः शिवाय" ही जपता रहा परन्तु मन को संतोष नहीं प्राप्त होता था। संदेह नहीं मिट रहा था।

"संशयात्मा विनश्यति"—ऐसा भगवान ने कहा है। यह सोचकर मैं और अधिक घबराता था। इसी ऊहा-पोह की स्थिति में एक दिन यह भाव अंकुरित हुआ कि अपने पूर्व इष्ट का जपनाम छोड़ना भी एक तरह से उसका तिरस्कार होगा। जिसे प्रारम्भ किया गया है उसे यावज्जीवन करना चाहिए। उसे छोड़ देने पर भी अनिष्ट सम्भव है।

यह भय भी पिंड नहीं छोड़ता था और उधर वह भय भी। दस-पन्द्रह दिनों तक इसी अन्तर्द्वन्द्व में पड़ा रहा। बाद में एक विचार मेरे मन में अपने आप उत्पन्न हो गया कि क्यों न शक्ति के नाम को इसी में शामिल कर लिया जाय। फिर २-४ दिनों तक यह तय करता रहा कि मन्त्र अत्यन्त गूढ़ विषय है और उसका रंचमात्र भी ज्ञान मुझमें नहीं है फिर ऐसा अनधिकार प्रयास क्या उचित होगा? इसका भी भयंकर परिणाम हो सकता है।

बस, एक दिन ये सब आशंकाएँ उस जगज्जननी की कृपा से अपने-आप निर्मूल हो गईं और महाशिवरात्रि पर्व के दिन हमने अपने जप में महाशक्ति के महामंत्र को सम्मिलित करने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

रात्रि की अन्तिम पूजा करने के बाद बहुत डरता डरता—

"ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॐ नमः शिवाय" को प्रारम्भ कर दिया। समाप्ति पर मन अत्यन्त पुलकायमान हो उठा। सारे शरीर में जैसे विद्युत्-संचार हो उठा हो।

प्रसादस्तु प्रसन्नता

मैंने अपने प्रभु की प्रसन्नता इसीमें समझी और उसी उत्साह से कुछ दिनों के बाद एक कापी पर शिव और शक्ति लिख कर जो वह लिखाती गई लिखता गया। जीवन में भी उस नाम के नामकरण का औचित्य अपने-आप पल पल प्रमाणित और सिद्ध होता गया। इसलिए यह निःसंकोच कहने में मैं कोई आपत्ति नहीं समझता कि पीछे जो शिव और शक्ति नामकरण कर लिया गया वह स्वयं ही सिद्ध हो गया—इसी जीवन में।

अब आइए हमलोग पुनः पूजन के क्रम में लगें।

"ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॐ नमः शिवाय" इस मन्त्र को कम से कम एक माला जप पूजन के बाद अवश्य कर लेनी चाहिए।

गीता में भगवान कृष्ण ने स्पष्ट कहा है—यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि **स्थावराणां हिमालयः।** १०–२५। जप करने की पूर्व परिस्थिति, स्थान, आसन, शारीरिक अवस्थिति आदि इन सब बातों का पूर्ण विवेक गीता में भगवान के कथनानुसार यहाँ दिया जा रहा है।

अध्याय ६

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमस्य विशुद्धये ॥१२॥

श्री हरिवल्लभ भक्ति दोहावली से

ठौर पुनीत निहारि कै करि आसन विस्तार।
नहि उचौ नीचौ नहीं पर कुश अजिन विचार ॥११॥

करि बैठे मनको सुथिर, सब इन्द्रिय को जीत।
बैठि आत्मा शुद्धि हित योग करै इहि रीत ॥२२॥

पवित्र स्थान में न अधिक ऊँचा न अति नीचा कुशासन पर मृगचर्मादि के ऊपर वस्त्रासन बिछाकर और उस पर बैठकर मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों को अपने वश में कर लेने वाला प्राणी अपने को बन्धनमुक्त करने के लिए योग करे।

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरम्।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥

श्री हरिवल्लभ भक्ति से

काया सिर औ ग्रीव को राखै एक समान।
डीठि धरै निज नासिका देखै नहि दिशि आन ॥ १३ ॥
शान्ति गहै, भयको तजै, ब्रह्मचर्य व्रत लेय।
मोंमें राखै रोकि मन, लहै योग को भेय ॥ १४ ॥

भावार्थ

भगवान् अब बैठने का नियम बतलाते हैं—

काया जो मध्य शरीर की रीढ़ है शिर और ग्रीवा (गरदन) को एक समान कर अर्थात् एक लाइन में करके अपने नासिकाग्र को देखना चाहिए और किसी भी दिशा की ओर नहीं देखना चाहिये। शान्त मन, भयरहित हृदय से ब्रह्मचर्य व्रत में लीन होकर मन को नियमित कर आत्मनिष्ठ पुरुष मुझमें लीन हो जाय।

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिनिर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

श्री हरिवल्लभ भक्ति से

यहि विधि करै जो योगको, निज मनको चिर राखि।
शान्ति लहै मोंको मिलै, रहै अमी रस चाखि ॥ १६ ॥

वह योगी जिसका इस प्रकार के नियम में मन है और वह इसी प्रकार अपने मनको मुझ में लगाता है तो वह परमानन्द में रहता है और मेरे सदृश शान्ति को प्राप्त करता है।

योगी के लिये आहार और विहार

भगवान कहते हैं—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥

भावार्थ

आहार और स्त्रीप्रसंग उचित मात्रा में करनेवाले सज्जन के सभी कार्य सुखद होते हैं। प्रमाण यह है कि आधा पेट अन्न से, चौथाई जल से भरे और चौथाई वायु-संचार के लिए खाली रखे। स्त्री-प्रसंग का प्रमाण यह है कि अतिकाम की इच्छा होने पर ही स्त्री-प्रसंग करे। अब यहाँ यह शंका हो सकती है कि योगी को तो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना चाहिये जैसा कि इसी अध्याय के चौदहवें श्लोक में कहा गया है। यह तो सच है। किन्तु 'ऋतौ भार्यामुपेयात्' इस श्रुति के प्रमाण से ऋतुसमयोपरान्त स्त्री-प्रसंग करने में भी एक तरह से ब्रह्मचर्य ही माना गया है। और भी कहा गया है:—

इंद्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्।
कर्मेन्द्रियाणि मनसा नियमा रमतेऽर्जुन ॥

दूसरा श्लोक गीता में ही कहा गया है जो इस प्रकार है—

योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।

अतः यदि योगी स्त्री-प्रसंग करेगा ही नहीं तो उसके कुल में धीमान् पुत्र ही कैसे उत्पन्न होगा? इन सब प्रमाणों के अनुसार स्त्री-प्रसंग करना उचित है।

अन्त में भगवान ने फिर कहा है:

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥ ४६ ॥

हे अर्जुन! योगी जो निष्काम कर्म करता है वह तपस्वियों से अधिक माना जाता है तथा ज्ञानियों से भी वह अधिक है और सकाम करनेवालों से भी अधिक है। इसलिये, हे अर्जुन! तुम निष्काम होकर क्षत्रिय धर्म के अनुसार धर्मयुद्ध में प्रवृत्त होओ, इसीमें तुम्हारी भलाई है।

क्षमा प्रार्थना

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमो नमः ।
भवे भवे नाति भवे भवस्वमां भवोद्भवाय नमः ।।

वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः । कालाय नमः कालविकरणाय नमो वलविकरणाय नमो वलाय नमः बल प्रमथनाय नमः सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ।।

अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोर-घोरतरेभ्यः ।
सर्वेभ्यः सर्वसर्वेभ्यो नमस्तेऽस्तु रुद्ररूपेभ्यः ।।
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ।।

ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम् ।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिव ओम् ।।

ॐ शिवोनामा सिस्वधितिस्ते पिता महस्ते अस्तु मामा हि सीः । निवर्त्त याम्म्या युषेन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्यायि ।।

विसर्जन

हाथ जोड़कर नम्रता से निवेदन करें—

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां पार्वतीपते ।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं महेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ।।
अपराधं सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽहमिति मां भक्त्या क्षमस्व परमेश्वर ।।
गतं शोकं गतं दुःखं गतं दारिद्रयमेव च ।
आगता सुखसम्पत्तिः पूर्णोऽहं तव दर्शनात् ।।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन रक्ष रक्ष सदाशिव ।।

नानापराधशतमन्वहमेव शम्भो कुर्वन्तथापि शरणं चरणं त्वदीयम् ।
यो दोषमन्तमपि रक्षति रक्षितासौ को वा न रक्षति निरागसमिन्दुमौले ।।

ॐ नमः पार्वतीपते हर हर हर महादेव ॥
ॐ अनेन महादेवपञ्चायतनपार्थिवपूजनकृतेन तेन
श्री भवानीशंकरदेवते प्रीयेतां, न मम ॥

हाथ में गंगा जल अक्षत चन्दन लेकर उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर भवानी शंकर देवता को प्रसन्न करने के लिए तष्टे में गिरा दें ॥ अन्त में ॐ विष्णवे नमः ऐसा तीन बार कहें ॥

उपसंहार

पार्थिव पूजन कभी छोड़ना नहीं चाहिये। यह पूजन जननाशौच और मरणाशौच सभी में किया जाता है केवल सूखे अक्षत पुष्प व बेलपत्र से। विदेशवास में भी इसे यथास्थान करते रहना चाहिये। यदि आप ट्रेनादि में हों तो वहाँ भी यह पूजन कर लेना चाहिये। कोई साधन व उचित स्थान उपलब्ध न भी हो तो केवल मानसिक पूजन ही कर लें; किन्तु उसे छोड़े नहीं। बीमारी की हालत में बिस्तर में पड़े-पड़े ही इसे कर लेना चाहिये, भले ही वह मानसिक हो। यदि कण्ठ अवरुद्ध भी हो तब भी मानसिक पूजन मनन करते हुये आँखों के नीर से करना चाहिए। इस प्रकार हमारी अपनी असमर्थता प्रकट हो जायगी।

भगवान् भोलेनाथ आपकी इस दशा पर अवश्य दयादृष्टि करेंगे और आपको आत्मबल प्राप्त होगा। इससे आपको स्वास्थ्यलाभ होगा और आप रोगमुक्त हो जायेंगे। यदि अन्त समय आ ही गया हो तो वे प्रभु आपको करुणा-निधि भगवान् तक पहुँचा देंगे। इसमें कोई शंका नहीं।

गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है "अन्त राम कहि आवत नाही" किन्तु साधन से और दृढ़ संकल्प से अनहोनी भी हो जाया करती है। फिर आप तो "भावी मेटहि सकहिं त्रिपुरारि" की शरण में हैं। वृद्धावस्था और मृत्यु आपका बाल भी बाँका नह ी कर सकती, ऐसा विश्वास आपको होना चाहिये।

मानसिक पार्थिव पूजन

रत्नैः कल्पितमानसं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरम्।
नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदांकितं चन्दनम्॥
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा।
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम्॥
सौवर्णे मणि खण्डरचिते पात्रे घृतं पायसम्।
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियु' रंभाफलं पानसम्॥

शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलम् ।
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या गृहाण प्रभो ।।
छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलम् ।
वीणा-भेरि-मृदंग-काहल कला गीतं च नृत्यं तथा ।।
साष्टांग-प्रणमः स्तुतिर्बहुविधा एतत् समस्तं मया ।
संकल्पेन समर्पितं तव विभो, पूजां गृहाण प्रभो ।।
आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम् ।
पूजा ते विषयोपभोगरचना, निद्रा समाधिस्थितिः ।।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिस्तोत्राणि सर्वा गिरो ।
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ।।

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा,
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व,
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शंभो ।।

ॐ नमः शिवाय

अनेन श्री भवानीशंकरौ कृतमानसिकपार्थिवपूजनेन श्री भवानीशंकरदेवते प्रीयेतां न मम ।

ॐ नमः पार्वतीपतये, हर हर हर महादेव शंभो ।।

नाम-धर्म और समाधान

वाल्टेयर ने अपने एक लेख में कहा है कि अगर पृथ्वी पर ईश्वर नाम की कोई सत्ता न भी हो तो भी मनुष्य को अपनी मनःस्थिति नियन्त्रित करने के लिये एक ईश्वर की सत्ता मान कर चलने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये; क्योंकि मनःस्थिति अनियन्त्रित होने पर मनुष्य की प्रवृत्ति उद्दण्ड, क्रूर व अमानुषिक हो उठती है और विवेक त्यागकर स्वार्थपरायण बन जाती है। इस तरह के अनेक उदाहरण आपके सम्मुख हैं उन्हें गिनाने की आवश्यकता नहीं है।

आज के युग में "हमारा धर्म नष्ट हो चुका है" इस तरह के विचार प्रकट करने वाले व्यक्ति को पागल समझा जाता है। समाज में उसकी कहीं पूछ नहीं होती। मनुष्य को घमण्ड हो गया है कि वह तो अब चन्द्रमा तक पहुँच गया है। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि चन्द्रमा तक पहुँचने की शक्ति भी हमें प्रकृति के गर्भ से ही मिली है। प्रकृति ने ही हमें अणु, परमाणु, यूरेनियम जैसी महत्वपूर्ण धातुयें दी हैं। वे मनुष्य की बनायी हुई नहीं हैं। मनुष्य ने तो केवल उनका

संगठन और समन्वय मात्र किया है। इसका श्रेय बस उसे मिल सकता है। इसलिए शक्ति पाकर मनुष्य को अभिमानी या स्वच्छन्द नहीं होना चाहिये और न उस आदिशक्ति की उपेक्षा ही करनी चाहिये।

सभी धर्मों में यह शक्ति किसी न किसी रूप में पूजनीय रही है। हाँ, उसके रूप अनेक हैं। सभी धर्मावलम्बी किसी न किसी रूप में उसकी पूजा और नामकरण करते हैं। उसके नामों के बारे में पड़ना व्यर्थ है।

नाम चाहे जो कुछ भी हो—जैसे अनेक नदियों का जल घूमघाम कर समुद्र में गिरता है वैसे ही इन सब नामों में केवल अन्तर मात्र है; वे सभी एक ही शक्ति की ओर संकेत करते हैं। ईश्वर एक है और वही सारी सृष्टि का संचालन करता है।

हम जानते हैं कि वर्तमान युग में इस प्रकार के पूजा-पाठ को कोई पूछने वाला नहीं है। फिर इस पुस्तक का क्या अर्थ? फिर भी कुछ लोग आस्थावान् हैं और शायद वे इससे लाभान्वित हो सकें।

यहाँ पर मैं श्रीदुर्गासप्तशती के कवच की महिमा अपनी आस्था के अनुसार अत्यन्त संक्षेप में वर्णित कर रहा हूँ जो मेरे जीवन के लम्बे अरसे में अपने आप सत्य सिद्ध होता गया है।

उसका एक अनुभूत दृष्टान्त मैं आपके सम्मुख रख रहा हूँ। इसमें थोड़ी सी भी अतिशयोक्ति नहीं है। समय-समय पर घटित घटनायें अत्यन्त विस्मयकारी हैं और काफी लम्बी हैं किन्तु; फिर भी मैं उनका मुख्य विषय संक्षेप में यहाँ रख रहा हूँ।

अगर आप दुर्गा के अर्गला और कवच का नित्यप्रति प्रातः विश्वास के साथ पाठ कर लिया करें तो यह निश्चित है कि आप आकस्मिक आने वाली आपदाओं से सुरक्षित रहेंगे। देश-विदेश कहीं भी आप किसी भी काम पर निकल रहे हों, ५ मिनट का समय निकाल कर देवी कवच का पाठ शान्त चित्त से कर लिया करें और कार्य पर निकल जायँ। आप के रोम-रोम की सुरक्षा भगवती अवश्य करेंगी और आप आपत्तियों से अवश्य सुरक्षित रहेंगे।

इसी विनय के कारण अनेक ऐसी घटनायें हुई हैं जब कि मैं मरते-मरते बचा था और दर्शकों ने आश्चर्य से पूछा था, 'आप तो अभी मर जाने वाले थे। कैसे बच गये?'

इसका सरल उत्तर यही है कि मैं माँ की कृपा से बच गया। मुझे दुख है कि मैं दिनाङ्क का उल्लेख नहीं कर सकता क्योंकि अति व्यस्तता और अस्थिरता के कारण नोट लिखने की आदत मुझ में नहीं है; किन्तु वे घटनायें इतनी आश्चर्यजनक थीं कि मैं उन्हें भुला नहीं सकता और वे आज तक हृदय पटल पर अंकित हैं।

(१) एक समय मैं अपने ५ साल के पुत्र को गोद में लिये एक मित्र के साथ लक्ष्मी जी का दर्शन करने जा रहा था। ज्यों ही वाराणसी के प्रसिद्ध ढाल बाँसफाटक पर रिक्सा पहुँचा, रिक्से का ब्रेक टूट गया। चालक ने काफी प्रयत्न किया, किन्तु रिक्से पर वह काबू नहीं पा सका।

मेरे मित्र इस संकट से पूर्णतः अचेत थे। मेरी गोद में बालक था, इसलिये मैं सक्रिय प्रयत्न नहीं कर सकता था। केवल बालक की सुरक्षा की चिन्ता रही। चाल बढ़ती गई। भीड़-भाड़ का समय था। वह सड़क शहर की प्रमुख सड़क है। कई जगह मोटरों और इक्कों से थोड़ी-थोड़ी टक्कर भी होती रही। किन्तु माँ की कृपा से रिक्सा उलटा नहीं और हम सब सकुशल सुरक्षित गोदौलिया पहुँच गये। उस दिन कवच की कृपा व महत्ता समझ में आयी। मैं केवल आने-जानेवालों को यह चेतावनी देता रहा कि हट जाओ, ब्रेक टूट गया है।

(२) करीब ३० वर्ष हुए मैं अपने ममेरे भाई के विवाह में बारात के साथ पटना जा रहा था। पटना सिटी पर उतरना था। वहाँ गाड़ी केवल ३ मिनट रुकती थी। मैं और मेरे २-४ नवयुवक मित्रों ने गाड़ी पर ही यह तय कर लिया कि हम दो-तीन लोग तुरन्त बाहर उतर जायँ और २-३ लोग भीतर से पूरा सामान खिड़कियों से बाहर कर दें। पचासों बरातियों का पूरा सामान प्लेटफार्म पर रख दें और तब कुलियों की सहायता लें। अन्यथा गाड़ी छूट जायगी और न कुली उतार पायेंगे और न बराती; क्योंकि वहाँ से चढ़ने वाले दरवाजा अवरुद्ध कर देंगे।

ऐसा ही किया गया। भीतर से मैं और मेरे एक ममेरे भाई सामान बाहर दे रहे थे। ५ बड़े बक्स अभी उतारने बाकी थे कि गाड़ी छूट गयी खिड़की से बाहर झाँक कर मैंने औरों से कह दिया कि आप लोग चलिये हम अगले स्टेशन पर उतर कर आ रहे हैं।

गाड़ी अगले स्टेशन पर रुकी। वहाँ हम दोनों सामान के साथ उतर पड़े। पूछने पर मालूम हुआ कि पटना जाने वाली गाड़ी ३ घण्टे बाद आयेगी।

स्टेशन से बाहर एक लारी पटना जाने के लिये सवारी ले रही थी। उसी में बैठने का विचार मैं करने लगा। इतने में पटना से एक सज्जन छोटी कार लेकर आ पहुँचे। वहाँ प्रयत्न किया गया कि किसी प्रकार कार में पेटी रखकर उसी में बैठकर जाया जा सके। किन्तु वह थ्री सीटर कार थी अतः उसमें बड़े बक्से न रखे जा सके। हमने अपने बड़े भाई को उसी में भेज दिया और बक्से भीतर अपने आगे एक पर एक रखकर और उसके आगे बैठकर

चलने के लिये तैयार हो गया। अभी सवारियाँ चली आ रही थीं। कोई कई टीन घी लिये, कोई चार-छ वोझ ईख लिये। ३२ की जगह ४० आदमियों को भर लेने के वाद गाड़ी चल पड़ी।

एक दूसरी लारी जो इसके वाद छूटी थी जव इस गाड़ी को पार करके निकल गई तो किसी नासमझ ने ड्राइवर से कह दिया कि देखा, आपके वाद छूटी और आपके आगे निकल गई।

ड्राइवर ने गाड़ी तेज करनी शुरु कर दी, किन्तु मुझे गति की सीमा वढ़ाना वड़ा खल रहा था। मैंने ड्राइवर को सावधान कर दिया। वह नशे में था। मेरी वात को उसने अनसुनी कर दी। गाड़ी में वैठी हुई जनता का भी हमें समर्थन नहीं मिला। मेरे वगल में दो पुलिसमैन सादी वर्दी में वैठे हुए थे। मैंने उनसे पूछा कि यहाँ ट्रैफिक पुलिस स्पीड कंट्रोल क्यों नहीं करता? सिपाही ने सभ्यतापूर्वक उत्तर दिया, 'शहर के वाहर हैं न वावूजी, इसलिये ड्राइवर ऐसा करते हैं।' उधर से होने वाले आसन्न खतरे से और उसके नतीजे से अनभिज्ञ होने के कारण मैं चुपचाप अपनी सीट पर वैठ गया और मन ही मन कवच का पाठ करने लगा। दो मिनट के वाद ही एक मोड़ आया। ड्राइवर का नियन्त्रण गाड़ी पर से समाप्त हो गया और गाड़ी उलट गई। मेरे ऊपर दोनों वक्से आये और उनके ऊपर सामने के लोग। मैं जीवन-आशा छोड़ १०-१५ सेकन्ड पड़ा रहा। आँखों पर धूप का चश्मा लगा था। वह टूट गया। कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। उस गाड़ी की अगली पहियों की आवाज सुनाई पड़ रही थी तव मैंने सोचा की प्राण अवशेष हैं। इन्हें प्रयत्न से वचाया जा सकता है। मैंने अपने ऊपर के वक्स को किसी प्रकार ठेल ठालकर खिड़की के वाहर कर दिया।

उस गाड़ी में करीव ४४ यात्री थे। ड्राइवर और उसकी ६ साल की कन्या उसके वगल में वैठी थी। तीन यात्री स्वर्ग सिधार गये। उसी शक्ति की कृपा से मैं और मेरा सामान सुरक्षित था। कवच का यह प्रत्यक्ष फल मुझे मिला। मुझे और उस ड्राइवर की कन्या को कोई चोट नहीं लगी। मैं और वहाँ के दो-तीन निवासी गाड़ी के घायलों की सेवा करने पहुँचे तो सव ने पूछा कि आपको चोट नहीं लगी? स्थान ग्राम से दूर था। इसलिये सहायता न मिल सकी, पर हम जो कर सकते थे हमने किया और वे उससे प्रभावित भी हुए और कहा कि लगता है भगवान् ने इसीलिये आपको वचा लिया।

अव अपना सामान देखने की याद आयी तो देखा कि दो वक्से नहीं थे। काफी खोज वीन की; किन्तु नहीं मिले। पास ही में एक गड्ढा था, थोड़ा गहरा भी था। उसमें लगभग एक पोरसा जल था। कपड़े उतारकर उसमें उतरा तो

पैर किसी के पैर से टकराया, पहले तो मुझे भय हुआ किन्तु बाद में मालूम हुआ कि कोई इस दुर्घटना का व्यक्ति है। झुक कर बाँह पकड़ कर बाहर खींचने पर मालूम हुआ। वह ड्राइवर था और १६″×४″ के बराबर सीसा सीना काटकर अन्दर घुस गया था। तब तक दरोगा जी जिन्हें सूचना दी गयी थी आ गये और उन्हें उसे सौंप कर मैं बाहर आ गया और एक लम्बा चक्कर लगाकर देखा कि दो बक्से खींचकर खेतों के पेड़ों के बीच रख दिये गये हैं। तब तक दरोगा जी ने घर पर जा रही बारात वालों को सूचना दी और वे लोग मोटरें लेकर वहाँ आगये। इस प्रकार सब विपत्तियों पर विजय पाकर मैं अपने लोगों से सकुशल मिल सका। कन्यापक्ष वालों के यहाँ जहाँ शुभकार्य में उदासी छा गयी थीं, मेरे वहाँ पहुँच जाने पर पुनः प्रसन्नता लौट आई। कवच का यह प्रत्यक्ष फल था जो मुझे मिला।

(३) सन् १८३२ की बात है। मैं अपनी १३ अश्वशक्ति वाली डेविड्सन मोटर बाइ विथ साइड कार से बाँसफाटक की ढाल तय करता हुआ ज्ञानवापी की मोड़ पर जैसे ही पहुँचा तो ठीक सामने बिल्कुल पास ही एक डाक्टर साहब अपनी कार ठीक दाहिने से इसलिये निकाले कि बायीं ओर गिट्टियों की १′ ऊँची ढेर लगी थी। ठीक टक्कर होने ही वाली थी, कि उसी समय कुछ ऐसा चमत्कार हुआ कि मेरी गाड़ी अपने आप गिट्टी की उस ढेर पर चढ़कर, जिधर से मैं आ रहा था, उधर मुँहकर ठीक ढंग से खड़ी हो गई और मैं उसपर सही-सलामत बैठा रहा। मुझे केवल इतना याद है कि जब मेरी गाड़ी टक्कर से बचाव कर रही थी उस वक्त उनके अगले नम्बर से मेरे साइड कार की रगड़ मात्र लगी थी। श्री डाक्टर साहब ने ज्योंही अपनी गाड़ी दाहिनी तरफ करने को कोशिश की तो उनके बराबर में एक ताँगा आ रहा था। उसके नत्र का अगला हिस्सा गाड़ी के विन्ड स्क्रीन को तोड़ बाहर निकल गया। मैं गर्दन घुमाकर उस दुर्घटना को देख रहा था कि एक सम्भ्रान्तवर्गी सज्जन उस गिट्टी पर चढ़कर मेरे पास आये और मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कराकर बोले "तुम नीचे उतरेगा।"

मैंने यन्त्रचालित पुतले के समान उनकी आज्ञा का पालन किया और उनके समक्ष खड़ा हो गया। उन्होंने मुझे दूसरा आदेश दिया, 'आप उस गाड का शुक्रिया अदा कीजिये जिसने आपको बचा लिया। अभी-अभी आप मरने वाले थे। मैं पटरी पर खड़ा था और मेरी साँस एक क्षण को रुक सी गई थी। जब मैंने अपनी भिची हुई आँखें खोलीं तो तुम्हें इस तरह गाड़ी सहित सही-सलामत देख कर हमने पहले-पहल तुम्हारे लिये गाड को सलाम किया।'

मैं उनकी यह बात सुनकर अवाक् रह गया और गद्गद् कण्ठ से दोनों हाथ जोड़कर उस जगज्जननी माँ को नमस्कार किया और चेतना जागृति के लिये उस महापुरुष को धन्यवाद कह उनका आभार प्रकट कर मैं घर चला आया।

यह थी उस माँ की कृपा और उस कवच का परिणाम। जब भी यह घटना याद आती है तो सारा शरीर काँप उठता है और रोयें खड़े हो जाते हैं।

(४) सन् १९३८ के नवम्बर मास में मेरा एक मित्र मेरा जानी दुश्मन बन गया। ऊपर के व्यवहार से उसने रंच मात्र भी यह प्रकट नहीं होने दिया, न ही उसमें मुझे कोई परिवर्तन दिखायी पड़ा। मैं उसका सम्मान करता था और बड़े भाई के समान उसके प्रत्येक काम को मैं बड़ी निष्ठा से पूरा करता था। वह या उसके परिवार में कोई बिमारी या कोई संकट की स्थिति आ जाती तो मैं एक पैर से रात-दिन और आवश्यकता पड़ी तो हफ्तों उसके भार को हलका करता। वह भी मेरी उन्नति के काम में सहायक होने में कभी पीछे न रहता। ३ साल तक दोस्ती इसी प्रकार चलती रही। वह बड़ा ही बुद्धिमान्, चालाक एवं ४-५ लाख की हैसियत वाला आदमी था।

उस वक्त बृटिश शासन था। उस वक्त के विदेशी अफसरों के साथ उसका खूब मेल-जोल था; क्योंकि वह चापलूसी करना खूब जानता था। उसी के कारण मेरा भी उन अफसरों के यहाँ उठना-बैठना हुआ करता था। वे अफसर मुझसे प्रभावित भी थे। मैं भी अपनी कला, जानकारी एवं बिजली सम्बन्धी ज्ञान से उनमें आदर का पात्र बना रहा। उन्होंने प्रसन्न होकर पचासों सार्टिफिकेटें दीं। मेरे लिये वे एक निधि हैं।

एक समय किसी बात पर मैंने उसका विरोध कर दिया। उसकी बात न्यायसंगत न थी अतः मैंने उसका समर्थन नहीं किया। इससे क्रुद्ध होकर वह ऊपर से मेरा मित्र रहते हुए भी मेरा जानी दुश्मन हो गया। पर मैं अपने फैसले पर डटा रहा।

एक दिन उस मित्र की तबीयत कुछ खराब थी। जाने के समय मूसलाधार वर्षा होने लगी और मुझे मार्ग में ही रुक जाना पड़ा। रोज के समय से एक घंटा देरी हो गयी। वर्षा रुकने पर मैं आगे बढ़ा और मार्ग में ही मुझे मित्र की गाड़ी आती हुई दिखी। मैंने उसकी गाड़ी में बैठ गया। गाड़ी में बैठते ही उसने देरी का कारण पूछा। मैंने कहा कि निकला तो था समय पर ही; किन्तु वर्षा ने रुकावट पैदा कर दी और कोई सवारी न मिल सकी; इसीलिये देरी हो गई।

वह तो कोई कारण खोज ही रहा था। इसी नगण्य कारण पर ही वह अपना विवेक खो बैठा और गाड़ी में ही ड्राइवर, अपने पुत्र और मित्र के सामने मेरे मुँह पर एक थप्पड़ जमा दिया। मैं अपना विवेक खोते खोते रुक गया। जी में आया कि इसे २-३ घूँसे जमा दूँ, पर फिर मैंने सोचा कि अपने से बड़े व्यक्ति से दोस्ती करके पहले ही एक भूल कर दी है अब फिर अपने से बड़े व्यक्ति को अपना दुश्मन नहीं बनाना चाहिये। यह सोचकर अपने दोनों हाथ घुटनों में दबा कर बैठ गया। आखों से पानी निकलने लगा। मैं एक शब्द भी बोल नहीं पाया और चुपचाप बैठा रहा।

गाड़ी के सभी व्यक्ति अवाक् हो गये और वे महाशय अब क्षमा माँगने लगे। पान की एक दुकान पर गाड़ी रोक कर पानी मँगाया तथा मेरा मुँह धुलवाया और बार-बार क्षमा कर देने के लिये अनुनय-विनय करने लगे। आगे ऐसा कभी न करने के लिये कसमें भी खाने लगे। मैं मौन साधे बैठा रहा। अन्त में सभी कार्यों से थक कर उसने अपना जूता उतार कर उस पर थूक कर चाटा और कहा अब तो तुम मेरे वादों पर विश्वास कर लो।

अन्त में हमारे मित्रों ने मध्यस्थता कर मेरे क्षोभ को कम करने का प्रयत्न किया। मैंने उनकी बातें मानकर उसे क्षमा कर दी।

दूसरे दिन मंगलवार था। हम लोग उनके बच्चों के साथ उन दिनों दिन में बटुक जी और रात्रि में महामृत्युञ्जय जी के दर्शन के हेतु जाते थे।

मैं मंगलवार को भी उसके यहाँ थोड़ी देर में पहुँचा; क्योंकि मनःस्थिति यह गँवारा नहीं कर रही थी। अपने आप को अत्यन्त प्रसन्न बनाये किसी प्रकार मैं उसके यहाँ गया ताकि उसे यह संदेह न हो कि मैंने क्षमा नहीं की। किन्तु उसकी आत्मा और क्रूर हो चुकी थी। उसे शायद इस बात का भय था कि कहीं मैं उससे कल वाली बात का बदला न लूँ। मेरी शक्ति से भी वह अभिज्ञ था और उससे मिलने वाले सभी लोग मेरे साहस एवं दूसरों के लिए अपनी जान कुर्बान कर देने वाली भावना से परिचित थे। शायद उसकी सतर्कता का यही कारण था।

गाड़ी का फाटक खोलकर ड्राइवर ने बैठने को कहा तो मैंने पहले उसे बैठने का अवसर दिया। गाड़ी में घुसते वक्त कोई ठोस चीज दरवाजे से लड़ी तो मेरा ध्यान उसी में फँस गया। मुझे आशंका हुई कि आज यह रिवाल्वर लेकर चल रहा है। मेरे मन में उसे परख लेने की भावना जगी। कुछ देर इसी उधेड़-बुन में पड़ा रहा और अन्त में एक उपाय सूझा। मैंने उससे कहा कि यार आज कारखाने में कोई नौकर न होने के कारण मैं जलपान नहीं कर पाया हूँ। कुछ

पैसा-वैसा ले चल रहे हो या वैसे ही, यह कहकर मैंने उसके जेब में हाथ डाल दिया। मेरी आशंका सही थी। वह रिवाल्वर ही थी। फिर भी मैंने कहा, वाह पर्स तो है ही, फिर क्या बात है ?

वह कुछ खिन्नता मिश्रित क्रोध से छिपने लगा। मैं भी आसन्न संकट के प्रति मन ही मन तैयार होता हुआ गाड़ी से बाहर आया तथा उसके पीछे-पीछे बटुकजी के मन्दिर की तरफ बढ़ने लगा। वह गाड़ी से करीब दो फर्लांग पड़ता है। करीब १½ फर्लांग चलने के बाद दाहिनी ओर मुड़ते ही एक बाग और काशी नरेश की कोठी के बीच एक अंधेरा मैदान पड़ता है। इसके बाद एक संकीर्ण मार्ग पार करते ही बटुक जी का मन्दिर पड़ता है। उस मैदान में पैठते ही मैं बायें घूम कर एक दीवाल के पास पेशाब करने बैठ गया। मेरा मित्र मुझसे आगे जा रहा था और करीब पचास कदम जाकर पेशाब करने के लिये बैठते-बैठते उसने मुझ पर गोली चला दी। उस जगन्माता की कृपा थी कि गोली दीवार में लगी, मैं बच गया और दौड़कर जमीन में गिरी रिवाल्वर को उठा लिया। मैंने उससे कहा दोस्ती के नाम पर कलंक लगाने वाले मित्र ! कल तुमने जूते पर थूक कर चाटा है। तमाम देवताओं की कसमें खायी हैं और आज इतना नीच काम किया तुमने ? अब बोलो, तुम्हें इसका क्या उत्तर दिया जाय ? उसने गिड़-गिड़ाकर कहा, 'ऐसा न समझो, मैं पेशाब करने के लिये झुका कि वह गिर पड़ी और स्वयं चल गयी।'

मैं अत्यन्त क्रोधित हो गया। मैंने कहा कि काकोरी केस में तुमने अपने देश के लाडलों के विरुद्ध बृटिश सरकार की सहायता की है और अनेकों को फांसी के तख्ते पर झूलने के लिये तुमने मजबूर किया है। इसी लिये उपहारस्वरूप बृटिश सरकार ने तुम्हें यह शस्त्र प्रदान किया है। यह तुम्हारे देशद्रोह का प्रतीक है। एक दिन यह तुझे अवश्य नष्ट कर देगा। देश-द्रोह करके तो तू उसे पचा गया, किन्तु मित्रघात तू नहीं पचा सकता। मुझे उसके झूठ बोलने पर अत्यन्त क्रोध आ रहा था। मैंने उससे कहा कि तुम भूल रहे हो। यह पिस्टल लाकसिस्टम का है और मैंने ही कलकत्ता से लाकर तुम्हारे पुराने पिस्टल के बदले में दिया है। जब तक इसमें लाक है, यह कभी गिरने से चल नहीं सकती। इस समय इसका लाक खुला है और यह तभी खोला जाता है जब गोली चलानी होती है। मैंने रिवाल्वर खोलकर देखा अब भी उसमें कुछ गोलियाँ शेष थीं। मैंने कहा, 'अभी तुम्हारी सत्यता का पता चल जाता है।' मैंने रिवाल्वर पर लाक चढ़ा दिया और सामने वाले पत्थर पर खींच कर दे मारा। न लाक खुला, न

गोली चली। मैंने उसे रिवाल्वर देते हुए कहा कि जाओ, अब चले जाओ। मैं अब भी तुम्हें क्षमा करता हूँ।

किन्तु वह बहुत नीच था और अपनी असफलता पर भी हार मानने वाला नहीं था। मेरे सामने समस्या यह थी कि अभी तक सभी लोग चने की दो दाल की तरह हम दोनों को समझते थे। यह जब दोस्ती के जामें में इतना बड़ा काण्ड कर सकता है तो यदि मैंने इससे दुश्मनी कर ली तो क्या होगा ? यह कितना भयंकर हो जायगा, इसकी कल्पना भी मैं नहीं कर पा रहा था।

दूसरे दिन अपने प्रतिष्ठित मित्रों के साथ वह फिर आ गया और एक काम के लिये मुझे बिजली कम्पनी तक चलने को कहा। मैं फिर झाँसे में आगया और पिछली सभी बातें भूलकर उसके साथ चला गया।

इस तरह २३ महीने और बीत गये। इस बीच वह भयंकर रूप से मेरी जड़ खोदता रहा। कई प्रतिष्ठित दुकानदारों ने कहा कि आपका मित्र बराबर हमलोगों को आपके टेन्डरों और एस्टिमेटों की जानकारी दिया करता है, और ऊपर से देखने में आपके भाई से भी अधिक प्रेमी दीखता है। मैं अवाक् रह गया परन्तु कुछ बोला नहीं। मैं सतर्क रहने लगा।

मेरी भावुक मूर्खता पर माता का संकेत और जीवन-रक्षा

हमारे यहाँ एक अंग्रेज डी० एस० पी० के मार्फत बहुत सा जादूघर और नाचघर का सामान एल्कोप्लेटिंग के लिये आया हुआ था। बहुत प्रयत्न करने पर भी उस पर से चाँदी नहीं उखड़ रही थी। उसके लिये मुझे करीब ४ औंस पोटैसियम आयोडाइड की आवश्यकता थी जो बाजार में कहीं नहीं मिल रही थी। मैंने अपने मित्र से कहा। दूसरे दिन यानी १० जनवरी १९३८ को प्रातः दस बजे उन्होंने पूरी बोतल यानी १६ औंस लाकर मेरी चौकी पर रख दी। मैं बहुत प्रसन्न था। मैंने उनकी खातिर के लिए ४ आने का पान मँगाया। ४ बिड़ा उन्हें दिया, ४ मैंने खाया और ८ बिड़ा वहीं पड़ा रहा।

मेरा प्रतिष्ठान (कारखाना) चार कमरों का मोती कटरें में था। उसके सभी कमरे एक लाइन में थे। एक में पालीस का काम, एक में प्लेटिंग, एक में अन्य काम तथा एक में आफिस था। आफिस में ही मेरे मित्र महोदय बैठे हुए थे। मैं अपने कार्यवश बगल वाले कमरे में से आधे घण्टे के बाद आफिस वाले कमरे में आया। वे मेरे मित्र, एक पत्र को जो मैं इन्हें देकर गया था लेकर बैठे हुये थे। यहाँ मैं यह बताना भूल गया था, कि मेरे आफिस का अंग्रेजी पत्र-व्यवहार मेरे ये मित्र ही किया करते थे। उन्होंने ४ बीड़ा पान मुझे देकर कहा कि लो

खाओ, मैं अपना पान खा चुका हूँ। मैं जब दूसरे कमरे से वापस आया तो मेरे हाथ में तामचीन का सिल्वर नाइट्रेट का कटोरा था। मैंने उसे टेबुल पर रखकर पान लेना चाहा। वे बिगड़ उठे और बोले, क्या तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गया है ? इस तेजाब के हाथ से पान खाओगे, इसीलिये तो तुम्हारा खून खराब होता जा रहा है। मैंने कई बार सावधान भी किया; किन्तु तुम ध्यान ही नहीं देते। मैं खिसिया गया और उनकी लाई गई बोतल पर से मोमी कागज नोचकर उसी में पान पकड़ना चाहा। वे फिर बिगड़ उठे और कहा, वाह, यह कागज भी तो उसी पोटैशियम की बोतल पर से उतारा गया है। मुझे दूसरा झटका लगा। उन्होंने कहा मुँह खोलो। मैंने मुँह खोल दिया। उन्होंने चारो पान मेरे मुँह में रख दिया। उन्होंने मेरे नौकर से पानी लेकर हाथ धोया और एक निश्चिन्तता की साँस ली।

अब मैं चौकी पर बैठकर उनकी लाई गई बोतल खोलने लगा। उसका कार्क १$\frac{1}{2}$" डाइमीटर का था तथा ऊपर से मोम द्वारा सील किया हुआ था अतः आसानी से खुल नहीं रहा था। जब मैं मुँह नीचे करके कार्क के मोम को खुरच रहा था तो मुझे मुँह में कुछ भारीपन महसूस हुआ जैसे कोई चीज इधर से उधर लुढक रही हो। उसी वक्त मुझे उस घटना का स्मरण हो आया जो मेरी माता जी ने मुझे आज ही सुबह बतलाया था।

मेरी छोटी बहन दो माह पूर्व विधवा हो गई थी। वह हम लोगों के समक्ष बहुत कम आती थी। एक कोठरी में वह और मेरी माँ दोनों सोया करती थीं। पिताजी उसके बाहर दालान में सोते थे। रात्रि के पिछले पहर वह एकाएक उठ कर रोने लगी। पिता जी की नींद खुल गई तो आवाज लगाई और पूछा क्या बात है, एकाएक यह रोने क्यों लगी ? उसने बताया कि भैया को किसी ने जहर दे दिया है और वे तड़प रहे हैं। यही स्वप्न देखकर मैं घबरा कर रो पड़ी हूँ। यह सारी घटना नीचे घटी और मैं ऊपर सोता था। किन्तु संकेत मेरी ओर था, अतः उस जगज्जननी की कृपा से बात मेरे तक पहुँचना जरूरी था। उसी मंजिल में रसोईघर और देवालय एक ही कमरे में पार्टिशन देकर बनाये गये थे। मैं प्रातःकाल पूजन पर बैठा था। हाथ पर पार्थिवेश्वर थे। मेरी माँ ने रोटी बनाते समय मेरी पत्नी से सारी घटना कह सुनाई और मैंने सुन ली। किन्तु इस तरह से स्वप्न देखना और रोने लगना तो मेरी बहन की आदत थी अतः उस समय उसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई।

पर उस समय मुँह में कोई चीज लुढ़कते जान वह घटना याद हो आयी और मैंने पान चबाने कि क्रिया वहीं बन्द कर दी।

ज्योंही मैंने कार्क ओपनर से कार्क को खोला कार्क छटक कर मेरे ओंठ पर लगा और मेरा मुँह अपने आप खुल गया और मुँह में से पारा गद्दी पर गिर पड़ा। मैं चकरा गया कि मुँह में पारे की गोली कहाँ से आ गई ? थूकने पर और भी कई गोलियाँ गद्दी पर गिरीं। अब मुझे पता लगा कि ये हफ्तों से पान में रख कर थोड़ा-थोड़ा पारा मुझे दिया करते थे और हमारा कान-नाक-आँख धूप में खड़ा करा कर देखा करते थे और कहा करते थे, भाई तुम्हारा खून दूषित होता जा रहा है। किन्तु भगवती की कृपा से आज सारा भेद खुल गया था। पारे की शीशी भी उनके पाकेट से पकड़ी गई। अब किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी।

व्यर्थ की बातें बनाने पर मैंने केवल उसे दो थप्पड़ दिये और कहा, 'जाओ, आज से तुम्हारी और हमारी दोस्ती खतम। अब कभी शकल मत दिखाना।' इच्छा हुई कि पुलिस में इसे दे दूँ किन्तु बाद में मैंने उसे यूँ ही छोड़ दिया।

मैंने मनुष्यता नहीं छोड़ी और तीन बार लगातार क्षमा का दामन पकड़े रहा। उस व्यक्ति ने अपनी नीचता नहीं छोड़ी। बराबर मुझे वह किसी न किसी षडयन्त्र में फँसाकर नष्ट कर देने में संलग्न रहा। मेरे विरुद्ध तथा मेरे सहायकों के विरुद्ध वह बराबर सरकार के पास बिना नाम का पत्र भेजता रहा। बार-बार जाँच होती रही; किन्तु भगवती की कृपा से अपना कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ। इस तरह अत्यन्त शक्तिसम्पन्न अफसरों तक पहुँचे हुए भी वह मेरा कुछ नहीं कर पाया, उसका कोई भी षडयन्त्र सफल नहीं हो पाया। यह सब उस जगज्जननी के कवच का परिणाम है, उन्हीं की कृपा का फल है। अन्त में वह नीच व्यक्ति अत्यन्त दुःखद एवं छिन्न-भिन्न अवस्था में मर गया। मैं तो डर रहा था कि जरा सा भी मैं उससे दुश्मनी करूँगा तो वह मुझे समाप्त कर देगा; किन्तु कुछ नहीं हो पाया।

उपरोक्त पिशाच ने अपनी सारी कलाओं में असफल होने के बाद भी बदले की भावना नहीं त्यागी और मेरे ऊपर मारण तन्त्र का अनुष्ठान कराया। मैं एक महीने तक भूल से पीड़ित रहा। अपने पिता जी का मैं इकलौता बेटा था अतः वे कोई भी उपाय करने में कटिबद्ध थे। उन्होंने ५०) में तय करके एक तान्त्रिक को बुलाया। किन्तु सामने आते ही वह अपनी दक्षिणा भूल गया और कहने लगा, तन्त्र-साधक तो बड़े वेग से मारण कर रहे हैं; किन्तु यहाँ तो भगवती स्वयं इसकी रक्षा कर रहीं हैं। इसका कुछ नहीं होगा और बिना रुपया लिये ही चला गया। जाते-जाते उसने पिताजी को कुछ गुप्त उपाय बता दिये थे। २-३ दिनों में ही मैं ठीक हो गया।

उस दिन से मुझे कवच पर अत्यन्त आस्था हो गई। उसके कुछ चुने हुए श्लोक तो पद-पद पर बल देते हैं :—

पदमेकं न गच्छेत्तु, यदीच्छेच्छुभमात्मनः।
कवचेनावृतो नित्यम्, यत्र यत्रैव गच्छति ॥ ४३ ॥
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सर्वकामिकः।
यं यं चिन्तयते कामं, तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥ ४४ ॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्यते भूतले पुमान्।
निर्भयो जायते मर्त्यः, संग्रामेष्वपराजितः ॥

और कुछ देखें—

अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्र यन्त्राणि भूतले।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः ॥ ४९ ॥
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः ॥ ५० ॥
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कुष्माण्डा भैरवादयः ॥ ५१ ॥
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजो वृद्धिकरं परम् ॥ ५२ ॥

इसलिए जब आस्थावान् होकर शुद्ध हृदय से कवच का नियमित पाठ करेंगे तो आप देखेंगे कि यह अपने आप में कितना सिद्ध है। इसकी एक-एक पँक्तियाँ कितनी सही हैं।

मैंने तो केवल उदाहरण के लिये यहाँ कुछ पँक्तियाँ उद्धृत की हैं; किन्तु आप गीता प्रेस की छपी दुर्गासप्तशती की पुस्तक बाजार से खरीद लें और उसका पाठ अपने नित्यकर्म में सम्मिलित कर लें। आप देखेंगे कि आप का कल्याण निश्चित होगा।

अन्त में

जो कुछ भी उलटा-पुलटा मैं अंकन कर सका वह आपकी सेवा में प्रस्तुत है। इसमें लिखावट; भाषाशैली की शुद्धता या अशुद्धता को आप बिल्कुल न परखें। आप केवल विषय को देखें क्योंकि मैं इस विषय का जानकार नहीं हूँ। उसकी कृपा से जो कुछ भी अनुभव जीवन में हुए हैं उन्हें मैं लड़खड़ाते हुये, डरते हुये कुछ खास-खास विषय पाठकों के सम्मुख रख सका हूँ। भगवती

की कृपा की इतनी छोटी छोटी घटनायें भी घटित हुई हैं कि सुनने वाले ताज्जुब में पड़ जाते हैं।

मैं संक्षेप में कुछ और घटनाओं का वर्णन कर रहा हूँ।

१५००) का चोरी गया माल ६ महीनों की दो किस्तों में अपने आप विना प्रयत्न किये १ वर्ष में मिल गया।

३००) का सामान चोरी जाने के ३ सप्ताह वाद ५) का टिकट लगाकर पोस्ट पार्सल से प्राप्त हुआ।

१५००) दिल्ली जैसे शहर में टैक्सी में छूट गया और २ घण्टे वाद मिल गया।

१००) नगद तथा २०००) का विजली टेस्टिंग का सामान मुगलसराय के टिकट घर की खिड़की पर छूट गया, जहाँ हजारों यात्रियों एवं टैक्सी, रिक्से वालों की जमघट रहती है; किन्तु दो घण्टे वाद जाने पर सही-सलामत मिल गया।

इस प्रकार उसकी प्रत्यक्ष कृपा को लिखा जाय तो एक ग्रन्थ वन सकता है। मैंने केवल महत्वपूर्ण बातों को अति संक्षेप में दिया है ताकि पाठक को उस आदि शक्ति में आस्था जागृत हो। मेरा केवल यही उद्देश्य है। लिखना न मेरी कला है, न मेरा पेशा, न उसका जानकार हूँ और न इसके लिये मेरे पास समय है। आशा है आप पाठकवृन्द मेरी अनेक गलतियों को क्षमा कर देंगे।

भवदीय

जगन्नाथ पाठक

इलेक्ट्रिक इक्विप्मेन्ट इन्डस्ट्री

गायघाट, वाराणसी।